विन्ध्य-हिमालय

विन्ध्य-हिमालय



शिवमंगलसिंह 'सुमन'



1966
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

समर्पण

आज माँ का स्मृति-दिवस है
प्रातः ही अस्ताचलगामी
चौदस के चाँद ने जीभर आशीषा,
याद आई पुण्य-वेला
उनके प्रयाण की,
मौसी से कह गईं
जहाँ रहे, सुखी रहे,
मेरे श्राद्धकर्म में
व्यर्थ न वहाए पैसा
बेटियाँ हैं व्याहने को।

पढ़ा था कि माता
कुमाता नहीं होती है
पुत्र हो भले कपूत
ऋषियों की आर्षवाणी
उत्कंपित हो उठी।
बोले बंधु 'लाला को तार दिए देता हूँ'
बोलीं वहुत दूर है,
दौड़ा हुआ आएगा

संकेत

प्रस्तुत संकलन में 1954 से 1960 तक की रचनाएँ संग्रहीत हैं। मालव-निवास और नेपाल-प्रवास की संचित स्मृति-राशि। विन्ध्य-हिमालय नामकरण इसी भाव-भूमि का परिचायक है। मालव में मेरा मन-मयूर विन्ध्या की धनाली हरियाली पर भाव-विभोर, 'प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः', शिप्रा की तरंगों-सा स्मर-स्फुरित, पाताल-पानी की भीनी फुहारों के साथ थिरक-थिरक उठने के लिए व्यग्र हो उठता था। नेपाल में हिमालय का अभ्रभेदी उदात्त संभार देखा तो अवाक् रह गया। जीवन में ऐसी विराट् शुभ्रता, स्वर्ग के प्रति धरती का ऐसा उल्लास मैंने कभी नहीं देखा था। पांच वर्ष उसके अभिराम क्रोड़ में क्रीड़ा करके फिर मालवा लौट आया और धीरे-धीरे पांच वर्ष बीतने को आए पर पुतली में समाई उसकी नैसर्गिक सुषमा में राई-रत्ती भी अन्तर नहीं पड़ा; प्रत्युत प्रत्येक दिनमान के साथ उसकी मधुर स्मृतियाँ रमणीय से रमणीयतर ही होती जा रही हैं—"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः।"

विन्ध्य और हिमालय की तुलना की तो दोनों अपनी-अपनी जगह लावण्यमय, प्रभामय। हिमालय कौपीन मेखलाधारी शुभ्रवेषी सन्यासी, उद्ग्रीव हिरण्यगर्भ, जिसके तपोदीप्त शरीर से विगलित स्वर्ण-रजत-आशीषों का अजस्र प्रवाह और विन्ध्य नाना वर्ण-गंधमय छबीला छैल जिसकी सहस्रार्जुनी प्रलंब बाहों के आलिंगन में सरिताओं और निर्झरों की अदम्य अठखेलियाँ। एक सात्विक अखण्डता का मानदण्ड और दूसरा राजसिक उन्माद का उन्मथित काल-खण्ड। एक शिव की शिवता का सम्यक् संकल्प और दूसरा अगस्त्य की तपस्या की पावन प्रणति। दोनों का आंतरिक उल्लास गंगा और नर्मदा के रूप में सुमुच्छ्वसित, उत्तर और दक्षिण के सांस्कृतिक-सचरण की समुज्ज्वल अर्चनाएं। पयस्विनी को समर्पित इस संग्रह की मूलभाव भूमि का रहस्य इसी में अंतर्निहित।

झ

प्रकाशन में अकल्पित विलंब मेरे अक्षम्य प्रमाद का परिचायक । गीता मे तामसी प्रकृति का एक लक्षण दीर्घसूत्रीपन भी बताया गया है जो मुझ पर पूरी तरह घटित होता है । सात्त्विक और राजसी वृत्तियों का आकलन ऊपर किया ही जा चुका है, अस्तु इस संग्रह में तीनों अपनी-अपनी जगह ।

विन्ध्यखण्ड की पहली रचना मालव-प्रदेश से मेरे परिचय की प्रथम अभिव्यक्ति है। वर्षो से अधूरी पडी थी, अब पूरी कर दी । प्रत्येक रचना का अपना इतिहास है जो उसी की जुबानी सुनने से आपको अधिक आनन्द आएगा । 'पौ फटने के पूर्व' की प्रेरणा प्रयाग की एक नवोन्मेषी गोष्ठी से सन् 1954 में मिली थी । उसकी प्रतीति उसी परिवेश मे समीचीन होगी । उस समय तक प्रयोगवाद वयःसन्धि की अवस्था पार कर चुका था । और नयी कविता की नयी परिणति की प्रतीक्षा थी । समय के साथ-साथ नयी कविता का नवोन्मेष मुझे पुलकित करने लगा है, उसकी ताज़ी हवा मे फेफड़ों को सुख मिलता है, विडम्बना वाला आंका तो अपने छिछलेपन के दलदल में स्वयं ही समाता जा रहा है ।

हिमालय की ड्योढी मे मेरा प्रवेश बडे ही नाटकीय ढंग से हुआ । संस्कार रूप मे हिमालय के प्रति मेरे मन का सम्मोहन जनन्तर सौहार्द के किसी अवचेतन में जैसे अबोधपूर्वक इस घड़ी की प्रतीक्षा ही कर रहा था । कालिदास ने सौन्दर्य की झीनी-चादर की ओट वे एक आधी झलक दिखाकर साक्षात्कार की व्यग्रता तो बढ़ा ही दी थी—

अस्त्युत्तरस्याम दिशिदेवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।।

इसे मेरे पर्युत्सुक मन का पुण्य ही कहना चाहिए कि एक दिन अनायास ही नेपाल-प्रवास का संयोग आ जुटा । मैं भाग्यवादी तो नही हूँ पर यह सत्य है कि विदेश-विभाग में प्रवेश पाने की न मैंने कभी कल्पना की थी और न मेरे मानस-परिवेश का उससे कोई साम्य ही था, न मैंने कभी ऐसी इच्छा प्रकट की, न कोई आवेदन-पत्र दिया, न किसी से अनुशंसा ही कराई । अच्छा-खासा कामायनी के लोल अपांगों की खुमारी मे खोया था कि अचानक एक दिन सूचना मिली कि मेरी नियुक्ति विदेश-विभाग में हो गई है और मुझे

नेपाल-स्थित भारतीय राजदूतावास में सांस्कृतिक और सूचना सचिव का काम सौंपा गया है। मैं भौंचक्का-सा रह गया कि बैठे-ठाले यह बला कहाँ से सिर पर आ पड़ी। प्रादेशिक-सचिवालय से पता लगाया तो मालूम पड़ा कि खबर बेपर की नहीं है। प्रारम्भिक वेतन और अन्य भत्ते उस समय की मेरी आय से दुगुने से कुछ अधिक ही थे, पर संयोग की बात कि उसके कुछ दिनों पूर्व ही इंदौर में पृथ्वी थिएटर्स का 'एक पैसा' नामक नाटक अभिनीत हो चुका था, जिसमें पैसे के पीछे दौड़ने वाले नायक की बड़ी दुर्गति दिखाई गई थी। मेरी धर्मपत्नी उससे बड़ी प्रभावित थीं, अस्तु आमदनी और ग्रेड की चर्चा होते ही फूट पड़ती थी कि "दाल-रोटी तो खा ही रहे है, रुपये के पीछे विदेशों में कहाँ मारे-मारे फिरोगे ?" दूसरी ओर नेपाल-स्थित तत्कालीन भारतीय राजदूत भगवानसहाय जी (सम्प्रति राज्यपाल-केरल) तार पर तार दिलवा रहे थे कि शीघ्रातिशीघ्र नेपाल पहुँचूं और अपना कार्यभार सभालूं। संभवतः उनकी धारणा रही होगी कि हिंदी का अनाड़ी कवि प्रथम प्रवेश में ही विदेश-विभाग की तड़क-भड़क से चकाचौंध हो जायगा तो बिचकेगा नहीं, कम से कम रस्सी तुड़ा के तो नहीं ही भागेगा। नियुक्ति-पत्र मुझे अप्रैल के द्वितीय सप्ताह में मिला था और 2 मई, 1956 को नेपाल के वर्तमान महाराजाधिराज का राज्याभिषेक था जिसमे सम्मिलित होने के लिए विश्व के कोने-कोने से गण्यमान्य राष्ट्रनायक पधारने वाले थे। समारोह के साज-सँभार के तो कहने ही क्या ? हिमालय के रजत रंगशीर्ष से उद्भासित काठमांडू उपत्यका इंद्रपुरी की सतरंगी विभा को भी चुनौती देती प्रतीत होती थी। मेरी तो समस्याएँ ही दूसरी थी—पहले तो एम० ए० और बी० ए० की अर्ध-परीक्षित उत्तर पुस्तिकाओं का ढेर सामने लगा हुआ था, दूसरे 14 वर्ष की अध्यापकी के पश्चात् विदेश-विभाग के अपरिचित वरण-कक्ष में प्रवेश करने का उपक्रम किसी भीरू नवोढ़ा के कंपित पग और धड़कते वक्ष के आलोड़न से कम कौतूहलजनक नहीं था। इसी ऊहापोह मे लगभग एक माह बीत गया। विदेश-विभाग के अधिकारियों को भी कुछ झल्लाहट हुई, पर मैं करता क्या ? नये अनुभव की अछूती जिज्ञासा किसी निश्चय पर मनोदशा को टिकने ही नही देती थी, इसी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की अवस्था में एक दिन रामायण के नित्य-पाठ में एक ऐसी चौपाई निकल आई कि मेरी सारी दुविधा एक झटके में ही ध्वस्त हो गई और पाठ समाप्त

होते ही मैंने प्रयाण का निश्चय घोषित कर दिया और शायद तीसरे ही दिन रवाना भी हो गया। चौपाई भी विशेष असामान्य या गूढ़ार्थी तो नहीं थी पर थी बडी उद्बोधक—"संशय विहंग उडावन हारी"। प्रसंग उस समय का है जब पिता की आज्ञा-पालन-स्वरूप राम तापस-वेष में अनुज और सहधर्मिणी सहित वन-यात्रा के लिए तत्पर होते हैं। बिलखती माता से विदा लेकर जब वे पिता का आदेश प्राप्त करने पहुँचते है तो विवर्ण, श्रीहीन, शोकातुर दशरथ को देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। वे करुणा-कातर स्वरों मे 'हाय राम! हाय राम!' पुकार-पुकार कर बार-बार मूर्छित हो जाते थे और व्यथा-विजड़ित अर्धचेतन अवस्था मे मन ही मन मनाते थे कि इस समय यदि राम मेरी आज्ञा की अवहेलना कर दें तो बहुत अच्छा हो। यद्यपि पुत्र द्वारा पिता की अवज्ञा रघुकुलरीति के प्रतिकूल होती पर पिता का मोह राम के आँखों से ओझल होने की कल्पना से ही सिहर उठता था। ऐसे धर्म संकट के अवसर पर सत्य-सध, कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मयोगी राम पिता से विदा लेते हुए अद्भुत संयम और अविचल सकल्पशील स्वरो मे कहते है कि—

" 'तात किए प्रिय प्रेम प्रमादू।
जस जग जाइ होइ अपवादू॥'

—हे तात! अयायास कर्त्तव्य सामने आ जाने पर यदि कोई प्रियजनो के बिछोह के भय से अथवा प्रमाद से उससे विमुख हो जाय तो ऐसे मनुष्य का यश सदा के लिए चला जाता है और उसे कलंक लगता है।" उस असमंजस की अवस्था में तुलसी बाबा का यह रामबाण ऐसा चुभा कि घर छोड़ते ही बना। मन में कुछ ऐसी विह्वलता समा गई कि पहली रचना 'आह्वान'-रास्ते में ही बन गई, पटना पहुँचते-पहुँचते। नेपाल पहुँचने के दूसरे या तीसरे ही दिन 'काठमाडू की पहली साँझ' हिमकण-सी ढल गई, विरही यक्ष की प्रतिध्वनि बनकर। इसके पूर्व मैंने कभी पारिवारिक ममत्व को व्यंजना का विषय नही बनाया था, प्रसंगवश मेरी कनिष्ठा पुत्रियो अपर्णा और रोचना के नाम अनायास ही आ गए हैं। नेपाल में मेरा पहला वर्ष विशेष विह्वलतापूर्ण बीता। कुछ तो परिवार से विलग हो जाने के कारण और कुछ प्रदेश की नवीनता के कारण। इस अभाव का भराव बहुत सीमा तक वहाँ के सुरम्य निसर्ग

और विरम्य नेपाली बन्धुओं की सरसता ने किया। रही-सही कमी पूरी कर दी परम सहृदय राजदूत भगवानसहाय जी की आत्मीयता ने। उनकी सहधर्मिणी दयावती भाभी के वात्सल्य का लेखा-जोखा शब्दों में नहीं दिया जा सकता। इस संदर्भ में युग के सजग प्रहरी दिनकर ने मुझे ठीक ही लिख भेजा था कि—

अहह तात लछिमन बड़भागी।
राम पदारविंद अनुरागी॥

तुलसी बाबा आड़े में बड़े काम आते हैं, सदियों से उन्होंने पीढ़ियों के मर्म में मरहम लगाया है। चलते-चलते मैंने अपने असमंजस का ब्यौरा बच्चन जी तक भी पहुँचाया था, क्योंकि इस अभियान में परोक्ष रूप से उनका भी हाथ था। धीर,-वीर अग्रज की भाँति बड़े ही आस्थापूर्ण स्वरों मे उन्होंने मेरी पीठ थपथपाते हुए लिखा था—'तुम अवश्य जाओ। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम अपनी अप्रतिहत आस्था से नेपाल और भारत के बीच सांस्कृतिक सेतु बनोगे।' साथ ही पशुपतिनाथ के पाशुपत अस्त्र की याद दिलाते हुए तुलसी बाबा का यह दोहा भी लिख भेजा था :—

सुनु भ्राता शाखामृर्गाह नहि बल बुद्धि विशाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु व्याल॥

मूल दोहे मे 'माता' के स्थान पर भ्राता लिखकर उन्होंने सम्बोधन भी संभाल लिया और हिन्दी के शाखामृग को शौर्यान्वित भी कर दिया। जो भी हो, सुहृदों का आशीर्वाद मुझे बहुत फला और नेपाल के प्रकृति-पुरुष के उन्मुक्त स्नेह-सीकरों को अँकोरना मेरे लिए मुश्किल हो गया। इस सम्बन्ध में भगवान से मैं कोई शिकायत नहीं कर सकता, सिवा एक करुण घटना के कि इसी बीच मेरी जन्मदात्री बिना मेरे सिर पर हाथ रखे चली गई। कई बार मेघदूत का ऋण अदा करने की इच्छा हुई क्योंकि अब अलकापुरी से रामगिरि को संदेश भेजने की बारी थी।

नेपाल में मुझे जो मिला उसका हिसाब-किताब लगाने के लिए एक उम्र चाहिए। राजदूतावास की तड़क-भड़क तो धीरे-धीरे भूल जाएगी पर नेपाल के लेखकों, कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों और कलाकारों के रंगों-रेखाओं-स्वरों

और छंदों के सरगम को भुलाने के पहले धमनियों में प्रवाहित रक्त की रवानी भी भूलनी पड़ेगी। विश्व के शीर्षस्थ कलाकारों की पाँति में गौरवपूर्ण आसन के अधिकारी प्रात स्मरणीय लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा के स्नेह-सम्पर्क को मैं अपने नेपाल-प्रवास की बहुमूल्य उपलब्धि मानता हूँ। नित्यप्रति गिरिराज हिमालय के दर्शनो का अलभ्य सुयोग तो पार्वती मैया के पुण्य-प्रसाद का ही फल कहा जा सकता है। ऐसी शुभ्र, उदात्त सौन्दर्य राशि की तो मैंने कल्पना भी नही की थी। कही कोई कालिख या दाग तक नहीं, जिससे आँखों मे खराश भी लगे। सुबह से शाम तक गौरीशकर, अन्नपूर्णा, गणेश हिमाल के श्वेतकर्पूरी शिखरों को देखते मैं नही थकता था। कालिदास को भी विधाता ने कैसी अछूती कल्पना-शक्ति दी थी कि उसे 'त्र्यम्बक का अट्टहास' ही कह डाला। मैं नित्य प्रात. बिस्तर से उठते ही खिडकी की ओर दौडता था कि पहले गौरी-शंकर और अन्नपूर्णा के सुधाकलशो को आँखों से पी लूं तब दरवाजा खोलूं कि मेरा हँसमुख नेपाली भृत्य गरम-गरम चाय से पलकों की नमी सेंक सके। मेरी इसी विस्मय-विमुग्ध दर्शन-लालसा की विह्वल अभिव्यक्ति 'वातायन से हिमालय-दर्शन' नामक रचना में हुई है। एक और छुटपुट रचना है 'चित्रकार के प्रति' जो वस्तुतः भारतीय राजदूत भगवानसहायजी की कला के प्रति मेरी अर्चना है। शायद कम लोगों को मालूम होगा कि वे एक कुशल राजनीतिज्ञ और शासक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के चित्रकार और शिल्पी भी हैं। अपने नेपाल-प्रवास में उन्होने नेपाल का अप्रतिम नैसर्गिक सौन्दर्य रगों और रेखाओ मे बाँध डाला था। उनकी बनाई हुई महापडित राहुल सांकृत्यायन की मूर्ति जो बाद मे एक नेपाली कारीगर द्वारा काँसे मे ढाली गई, किसी दिन राष्ट्रीय सग्रहालय की बहुमूल्य निधि बनेगी। नेपाल से जब उनकी विदाई होने लगी तो कई नेपाली कलाकारों ने मुझ से बडा आग्रह किया कि राजदूत के चित्रों की प्रदर्शनी अवश्य आयोजित की जाए क्योंकि राजदूतावास के भीतर तो गिने-चुने लोगो को ही प्रवेश का सौभाग्य मिल सकता था। मैंने राजदूत से बतलाया तो वे किसी भी प्रकार राजी न हुए। मुझे भी एक चाल सूझी और मैंने गुप्त रूप से महाराजाधिराज के सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वे इसका उद्-घाटन कर दें तो सब बात सवर जाए। वे राजी हो गए, पर कानोंकान किसी को खबर न लगी। इसमें महाराजाधिराज महेन्द्र की सहृदयता और भगवान

सहाय जी के प्रति उनकी अगाध आत्मीयता का भी अंश था। जब मैंने सब तैयारी कर ली और तिथि उद्‌घाटित की तो सब आश्चर्यचकित रह गए। भगवान सहाय जी मुझ पर झल्लाए तो बहुत पर महाराजाधिराज के सहज सौहार्द से अभिसंचित होकर उपकृत भी हुए। नेपाल के बाहर यह कम लोगों को विदित है कि महाराजाधिराज बड़े ही मार्मिक कवि और विदग्ध कलाकार हैं। उनकी वाणी में नेपाल-राष्ट्र का समस्त आलोड़न और उल्लास अभिव्यंजित है। इस प्रदर्शनी की नेपाल मे बड़ी धूम रही। लगभग दस दिनों तक नेपाल-भारत सास्कृतिक केन्द्र में मेला-सा लगा रहा। कलाकारों, वरिष्ठ अधिकारियो, विद्यार्थियों, व्यापारियों आदि सभी वर्ग के लोगों ने इसे देखा और सराहा। नेपाल और भारत को आत्मीयता के सुदृढ़ सूत्रों में गूँथने के लिए इससे सुकुमार रेशमी डोर नही हो सकती थी। सबसे बड़ा उल्लास तो लोगों में इस बात का था कि भारत के राजदूत ने नेपाल के सौन्दर्य को जिस अन्तरदृष्टि से परखा है वह जन-जीवन की सबसे बडी थाती है। एक छोटी-सी चतुष्पदी गुरांस के फूल पर भी है। नेपाल में गुरांस का लाल फूल प्रेम का प्रतीक माना जाता है। भद्र शिक्षित समाज से लेकर श्रमिक वर्ग तक उसकी सामान मान्यता है। पहाडों पर लकड़ी काटने जाने वाली गरीब मजदूरिनें भी पीठ पर लकडी का बोझा लादकर पाटी के झुरमुट से एक गुरांस का फूल तोड कर जूड़े मे खोंस लेती हैं। ऐसा ही लोकप्रिय एक प्यार का पंछी भी है—डाँफाचेरी, चकोर सा-चाहभरा। नेपाल से मेरे प्रयाण को 'प्यासों को प्रणाम है' शीर्षक रचना में परिलक्षित किया जा सकता है। 'माँ गई' शीर्षक अर्चना व्याख्यातीत है। माँ के दूध के एक बूँद का भी मोल आज तक कौन सपूत चुका सका है? इत्यलम्! अब आप शौक से इसके पृष्ठ पलट सकते हैं। एक अतलमूक व्यथासिक्त करुण-गाथा अव्यक्त ही रह गई है, अभी समय उसको गवाही देने को तैयार नही।

—शिवमंगलसिंह 'सुमन'

अनुक्रमणिका

खण्ड—विन्ध्य

खण्ड—हिमालय

विन्ध्य

एक तुम्हारे नाते जीवन-गाथा
सहज अनन्य हो गई,
तुम अंतर में रमे इसी से
मेरी काया धन्य हो गई।

विन्ध्या का सोता

मन किसी यक्ष का संदेशा बन कर गिरि वन पर छाया है,
मालव के मनहर अंचल में कवि भूला है, भरमाया है।

वह माप रहा छाई दिगंत तक हरियाली का अभ्यन्तर,
पातल-पानी-सा फूट पड़ा फिर रुद्ध-क्षुब्ध आतुर-अन्तर।

उसने देखी विन्ध्या की बाँहों में चोरल की बरजोरी,
अंगों-अंगों में पुलक-किलक, सैना-बैनी, चोरा-चोरी।

विन्ध्या के अन्तस में चोरल की रूप-सुधा छन जाती है,
कल्पना उभरती नूरजहाँ के कल-कपोत बन जाती है।

नर्मदा अमरकंटक से सुमनों की सौगात सजाती है,
ओंकारेश्वर के बीच सकुचती सहमी-सहमी आती है।

जो धुआँधार में धारा का स्वर्गिक उल्लास लुटाती है,
वह संगमरमरी बाँहों में बरबस बंदी बन जाती है।

माँडू के महलों में जिसको आभा अभिसार सजाती है,
सपनों की रूपमती रेवा की रेखा-सी रह जाती है।

इतिहास बता सकना मुश्किल बाँधे-अनबाँधे मर्मों का,
विन्ध्या का वैभव साक्षी अगणित पुण्य-पुलक उत्सर्गों का।

सोती है विगलित व्यथा मूक आस्थाओं के आवरणों में,
विन्ध्या साकार प्रणति अर्पित पावन अगस्त्य के चरणों में।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' तपस्या के वितान-सी तनती है,
भगवान भास्कर मुग्ध, उच्चता विनय किस तरह बनती है।

निर्धूम जातवेदस् ज्वलंत शिखरता अर्पिता गौरी से,
उत्तर-दक्षिण को बाँध दिया जिसने किरणों की डोरी से।

विन्ध्या की वेदी पर बैठा मैं एक अग्निचित होता हूँ,
आहुत अगस्त्य के चरणों से फूटा छोटा-सा सोता हूँ।

अनुष्ठान

मैं शिप्रा-सा ही तरल सरल बहता हूँ,
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूँ।
मुझको न मौत भी भय दिखला सकती है,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूँ।

हिमगिरि के उर का दाह दूर करना है,
मुझको सर, सरिता, नद, निर्झर भरना है।
मैं बैठूं कब तक केवल कलम सम्हाले,
मुझको इस युग का नमक अदा करना है।

मेरी श्वासों में मलय-पवन लहराए,
धमनी-धमनी में गंगा-जमुना धाए।
जिन उपकरणों से मेरी देह बनी है,
उनका अणु-अणु धरती की लाज बचाए।

अवंतिका से विदाई के समय

(अगस्त 1954)

मैं कुमुद्वती से राम-राम करता हूं,
कालीदह के दह को सलाम करता हूँ।
जिसकी रज से उपकृत गीता का गायक,
उस सांदीपनि गुरु को प्रणाम करता हूँ।

मैं लोल अपांगों के सपने सेता हूँ,
मैं शिप्रा का जल नयनों में लेता हूँ।
कवि कालिदास जिनके गजरों पर रीझे,
मालीपुर की मालिनो, विदा लेता हूँ।

मेरे उर में भी रूप किसी का अटका,
मेरे विराग में अनुरागी सुर लटका।
भर्तृहरि, तुम्हारी परम्परा का मैं भी,
घर से वन, वन से घर, वर्षों तक भटका।

मेरा सलाम लो पीर मछंदर बाबा,
हर सिजदे पर निर्मित होता है काबा।
यह अलमस्ती की दुआ तुम्हीं से पाई,
दुनिया में दर-दर अलख जगाओ बाबा।

जिसके गृह-गृह में संस्कृति की निधि बिखरी
जिसके छौने थे इतिहासों के प्रहरी।
उसके अतीत को वर्तमान करने में
सौ 'सुमन' मिटें पर जिए अवंती-नगरी।

तुम जिसने मुझको प्रणय-पुरस्सर हेरा,
तुम जिसने मेरा पथ बदली बन घेरा,
तुम जो मेरे हित प्राणों तक से खेले,
मैं जनम-जनम को हुआ तुम्हारा चेरा।

जब कभी आम की बगिया बौराएगी,
जब कभी कोयलिया छिप-छिपकर गाएगी,
जब कभी टिकोरों से टकरा जाओगी,
मेरी गदराई याद तुम्हें आएगी।

पथिकों की गति, मति, अदा जता देता हूँ
वेतस-निकुंज संकेत बता देता हूँ।
कुछ काम आ पड़े शायद परदेशी से
चलते-चलते मैं पता बता देता हूँ।

जब मधुऋतु की पागल बयार छाएगी,
सूनी रजनी दुलहिन-सी शरमाएगी,
तब सुबह सेज के सुमनों को छू लेना
उनमें तुमको मेरी सुगंध आएगी।

मन का मोती

मन का मोती मैं तुम्हें दिए देता हूँ
तुम इसे वेधकर अपना हार बना लो।

हर साध तुम्हारे लिए संजोई मैंने
तुम इसे लुटाओ या अंतस में साधो,
हर साँस समर्पित तुम्हें किए देता हूँ
तुम इसे बिखेरो या अंचल में बाँधो।

मेरी रसना में रसा रसवती होती
कल की क्या चिंता, देखेंगे तब की तब,
अंतर की जलन मुझे बतला देती है
मिट्टी को मिलता स्नेह नहीं बेमलतब।

जाने फिर किस साँचे में ढाला जाऊँ
तुम मुझे जला कर दीपावली मना लो,
मन का मोती मैं तुम्हें दिए देता हूँ
तुम इसे वेधकर अपना हार बना लो।

यह तो आँखों का दोष कि दर-दर भटका
परदा दोनों के बीच बहुत झीना है,
सुर-असुर जिसे पीने से घबराते हैं,
उसको हँसकर पी जाना ही पीना है

सबके अंतर के तार बँधे हों जिससे
झंकारों की शृंगार वही वीणा है।
अपने हित जीकर कई जनम खोए हैं
तुममें लय होकर जीना ही जीना है।

जाने फिर कब पीड़ा में पाला जाऊँ
तुम मुझे तपाकर खोटा-खरा भुना लो,
मन का मोती मैं तुम्हें दिए देता हूँ
तुम मुझे वेधकर अपना हार बना लो।

चल-क्षण

यह कैसा संयोग कि सकुचा सहमा-सा सहवास था ?
यह कैसा विनियोग अपरिचित-सा अपना ही श्वास था ?

मन की मन में रही कहा जो वह सारा बकवास था,
वर्षों का विश्वास बन गया क्षण भर का उपहास था,

वेणी के बंदों में लिपटा मलयागिरि का वास था,
आँखों की पाँखों में सिमटा सपनों का मधुमास था,

कैसी बही बयार कि मेरा मन पीपल का पात था,
आज हमारा और तुम्हारा बस इतना ही साथ था ।

दूज का चाँद

यह हँसिए-सा चाँद
धार तो दिखती है,
बिना बेंट के
काट करेगा पर कैसे ?

इसकी मार भीतरी
शायद सालेगी,
ऐसी अचकी चोटों से
भगवान बचाए !

शरद पूर्णिमा

बीती बेसुध बरसात शरद शरमाती-सी आई,
होठों में हुलसे कंज आँख में कोंईं इतराई।
गोरे अंगों में कसी-फँसी धानी अँगिया निखरी,
आँचल में भूले कांस हँसी में शेफ़ाली बिखरी।
साँसों में खिले कपास, प्यास सागर की दहक उठी,
अंतर में उमड़ा ज्वार, ज्वार की कलँगी लहक उठी।
वाली-वाली पर नाच आँख पहली भाषा बोली,
करतो-सी कुछ संकेल वाजरे की उँगली डोली।
हल-बक्खर पैर पसार भुनाने वैठे हुंडी-सी,
शैशव-सा चना विभोर मटर के मन में घुंडी-सी।
पूरब में जागा प्यार, साँझ का सपना टूट गया,
द्यावा-पृथ्वी की प्रीति परस से मधुघट फूट गया।
झीनी-सी रजत फुहार झरी चेतन अवगुंठन में
ढहती तन की दीवार गुलाबी सिहरन-सी मन में।
सुनते हैं ऐसी रात सदा से आती जाती है
सुनते हैं ऐसी रात किसी की बात बताती है।
सुनते हैं ब्रज में आज सँवरिया की सुधि आती है
बैठी कुंजों की ओट बँसुरिया ईमन गाती है।
सुनते हैं ऐसी रात यक्ष का शाप बँटाती है,
राधा की रोती आँख पिया की पाती पाती है।

सुनते हैं ऐसी रात श्याम ने रास रचाया था,
यौवन का मुक्त उभार फ़सल बनकर लहराया था।
सुनते हैं ऐसी रात गोपियाँ भूली-भूली थीं,
सुनते हैं ऐसी रात कली की मसलन फूली थी।
तन पिघला, मन मतवार, मूर्त्त क्षण ब्रह्मानंदी था,
सुनते हैं ऐसी रात मधुप कलियों का बंदी था।
तट के प्यासे अभिसार लहर छप-छप दुहराती थी,
कालिंदी की मनुहार कगारों से टकराती थी।
अधरों के संपुट मौन भुजाएँ सिमटी-सिमटी थीं,
सुनते हैं ऐसी रात लताएँ तरु से लिपटी थीं।
जड़-चेतन लय सुर ताल खुमारी ऐसी छाई थी,
सुनते हैं ऐसी रात सूर ने आँखें पाई थीं।
जैसे बीता रस-रास रसिक की आँखें बंद हुईं,
पूनम की पल अनुभूति युगों के मनहर छंद हुईं।
भीतर भर गया प्रकाश अँधेरा बाहर सिमट गया,
द्वापर का रस-संचार सूर के सुर में लिपट गया।
अंतर में थी झंकार कि बाहर इकतारा झनका,
पूजा की पहली भेंट कि सरका था मन का मनका।
पूनम की मधु-अनुभूति बन गई थाती कल्याणी,
गोपी-गोपों की प्रीति बन गई जन-जन की वाणी।
सदियों जिसने दुख-दर्द हमारा पल-पल बहलाया,
बिछुड़े ब्रज का शृंगार पदों के रस में पलुहाया।
कल जो आई थी रात बड़ी ही सूनी-सूनी थी,
कल जो सोची थी बात बड़ी ही ऊनी-ऊनी थी।

कल साँसों का संसार बड़ा ही उखड़ा-उखड़ा था,
कल जमुना तट-अभिसार बड़ा ही उजड़ा-उजड़ा था।
फ़सलें विधवा-सी मूक सितारों का मुँह तकती थीं,
माखन-मिसिरी की बात कहानी-सी कुछ लगती थी।
खाली थे पड़े बखार लटकते छूंछे छींके थे,
दो-चारों घर को छोड़ गोपियों के मुँह फीके थे।
गोपों के हृदय उदास पलक कुछ भारी-भारी थी,
बिसरा पूनम का प्यार भला कैसी लाचारी थी।
सुनते हैं ब्रज को आज बसाने की फिर से ठहरी,
सुनते हैं लाखों हाथ करेंगे जमुना को गहरी।
गोकुल गोरस हित आज हुआ जन-जन मतवाला है,
धरती हो रही दुधार कन्हैया आने वाला है।
जिसकी बंसुरी पर नगर-ग्राम-गलियारे नाचेंगे,
फिर ऐसा होगा रास कि चांद-सितारे नाचेंगे।
लखकर जिसकी लिखवार न आँखें लेखेंगी कुछ भी,
पूनम का मुखड़ा देख न आँखें देखेंगी कुछ भी।

पापिन आँख

मेरी आँख बड़ी पापिन है।

तुम्हें देखती हैं भूखी-सी
तुम्हें पेखती हैं प्यासी-सी,
अंग-अंग छूकर अकुलातीं
विसुध वासना की दासी-सी।
मलय-वलय माधुर्य
सूँघ लेने वाली काली नागिन है॥

लाज - लिहाज छोड़
घूरा करती हैं तुमको वातायन से,
मैले कर देतीं मंगल-घट
पाँखों में लिपटे रज-कन से।
मिट्टी की मधु-गंध
अंध बन पी लेने की अभ्यासिन है॥

मेरे लोभी-लंपट मन को
छवि-छाया का मर्म जना दो,
या मेरी कलुषित आँखों को
मुझसे ले लो, सूर बना दो।
ज्योति तुम्हारी जुगो-जुगो कर
पुतली भी तो बड़भागिन है॥

मेरी आँख बड़ी पापिन है।

जिस दीपक के संग-सहारे

जिस दीपक के संग-सहारे तुमको खोजा
प्रथम मिलन में उसे तुम्हीं ने बुझा दिया।

हम दोनों की गाँठ बँधी मंडप के नीचे,
हुई आरती, दिशा-दिशा में दीप जले।
साँसों की शहनाई बजती रही सकुचती,
आँख बचाकर मुस्कानों के फूल खिले।
जिसकी लौ ने लाज छोड़कर सेज सुझाई
उसे सुहागरात में तुमने बुझा दिया।

बाहर दीप बुझा भीतर भर गई जलन-सी
जिसे बुझाना आज तलक सम्भव न हुआ।
धुआँ-धुआँ-सा कमरे में भर गया मगर प्रिय,
अन्धकार में कोई देता रहा दुआ।
तुम मानो या नहीं मगर दीपक की बाती,
सिर कटने पर और अधिक जल उठती है।
तुम जानो या नहीं मगर प्राणों की थाती,
मिटते-मिटते और अधिक छल उठती है।
जिस छलकन के लिए तुम्हें युग-युग से खोजा
हाय, उसी को तुमने पथ पर लुटा दिया।

मैं अकेला और पानी बरसता है

प्रीति पनिहारिन गई लूटी कहीं है,
गगन की गगरी भरी फूटी कहीं है,
एक हफ्ते से झड़ी टूटी नहीं है,
संगिनी फिर यक्ष की छूटी कहीं है,
फिर किसी अलकापुरी के शून्य नभ में
कामनाओं का अँधेरा सिहरता है।

मोर काम-विभोर गाने लगा गाना,
विधुर झिल्ली ने नया छेड़ा तराना,
निर्झरों की केलि का भी क्या ठिकाना,
सरि-सरोवर में उमंगों का उठाना,
मुखर हरियाली धरा पर छा गई जो
यह तुम्हारे ही हृदय की सरसता है।

हरहराते पात तन का थरथराना,
रिमझिमाती रात मन का गुनगुनाना,
क्या बनाऊँ मैं भला तुमसे बहाना,
भेद पी की कामना का आज जाना,
क्यों युगों से प्यास का उल्लास साधे
भरे भादों में पपीहा तरसता है।
मैं अकेला और पानी बरसता है।

होली

आज सुबह से बदली-बदली बोली है,
लोल कपोलों में अबीर है, रोली है,
हो ली - हो ली कहते तारे भाग गए
अम्बर की आंखों में शोख ठठोली है।

कितना बांकापन है बांकी चालों में,
बल खा जाती नदी जिस तरह ढालों में,
मैंने तो पथ से पायल की बात कही,
किसने लाल गुलाल मल दिया गालों में !

मादक लाली की सीमा कजरारी है,
राधा को बांधे रसिया बनवारी है,
रंग-रंग के रंग धरा ने देखे हैं,
लेकिन इस रंग की लीला बलिहारी है।

जिस पर बनमाली ने सुध-बुध वारी है,
वह सुषमा भी तो तेरी लाचारी है,
बांसुरिया को तू जी भर ले कोस मगर
उसी बांस की तो तेरी पिचकारी है।

रंग-पंचमी

बड़ी रंगीली रंग-पंचमी आई हो,
गली-गली में रस की बदरी छाई हो,
हल्की-हल्की हवा हुलसती प्यास-सी,
होली को चोली में दहक पलाश की,
खिला अशोक उमंगों को हलकोरता,
लाल-लाल गुच्छों से चरण अँकोरता,
पतझर के पत्तों में मर-मर प्यार का,
नगी डालों में रंग नये निखार का,
बहकी-बहकी बातें आज बहार की
होठों में लगती है लपट अनार की,
फ़सलों की पलकों को पावस खोलता,
गेहूँ की बालों में दाना बोलता,
हर दाने का अपना-अपना राज है,
गेहूँ का रँग-रूप सृजन का साज है,
इसीलिए तो होली हँसती आज है,
इसी ठठोली में फागुन की लाज है,
इसकी लाली में खिलता शृंगार है,
मलो अबीर, गुलाल तुम्हें अधिकार है,
काला मुख करने वालों से रार है,
होली तो बस लाली का त्योहार है,

कोई मुख नीला-पीला रह जायगा,
तो फिर पर्व तुम्हारा सब ढह जाएगा,
झरे हुए पत्तों को झोंको आग में,
नई कोंपलें रोपो अपने बाग में,
घर-घर की होली में भूनो बालियाँ,
नई फ़सल की खुशहाली की डालियाँ,
छोला छीलो, चोला बदलो प्यार में,
होला भूनो होली के सत्कार में,
नये तरन्नुम में नाचो दे तालियाँ,
प्यार लुट रहा दे लो मीठी गालियाँ।
ढोलक की थापों पर फिर आवाज़ दो,
नये ज़माने को सरगम दो, साज़ दो,
मसलो लोल कपोल रात को भोर दो,
चूनर को उफ़नाए रस में बोर दो,
वर्षों की उलझी कबरी को खोल दो,
बिखरे केशों में मावस का मोल दो,
अंगों-अंगों में रस की बरसात हो,
रंगों-रंगों में रंगों की बात हो,
सबकी ख़ातिर हो बिछुड़े मेहमान-सी
राशि-राशि खुशियाँ उमड़े खलिहान-सी,
मन में भरा हुलासों का हुलसाव हो,
डालों-डालों बौरों का बौराव हो,
बौराए जो नहीं जवानी उसकी क्या ?
गदराए जो नहीं कहानी उसकी क्या ?

टपके नहीं रसाल रसानी जानी क्या ?
दहके नहीं मशाल आग का पानी क्या ?
ठंडी मत होने दो ये चिन्गारियाँ,
लाओ लाओ सब अपनी पिचकारियाँ,
ऊषा की लाली भर लो पिचकारी में,
कोयल की गाली भर लो पिचकारी में,
माली की डाली भर लो पिचकारी में,
तितली की ताली भर लो पिचकारी में,
भ्रमरों की गुन-गुन गाओ पिचकारी में,
गन्ने का रस भर लाओ पिचकारी में,
महुए का मदभार भरो पिचकारी में,
सावन की बौछार भरो पिचकारी में,
बीन, बाँसुरी, चंग भरो पिचकारी में,
ढोलक, झाँझ, मृदंग भरो पिचकारी में,
इंद्रधनुष के रंग भरो पिचकारी में,
होली का हुड़दंग भरो पिचकारी में,
मारो-मारो जगह बेजगह मत देखो,
फागुन की फुहार में भादों मत लेखो,
बड़ी निगोड़ी पिचकारी करती दिक है,
तन-मन सब रँग गया राम ही मालिक है,
मइया! मैं तो मरी नजर नीची-नीची,
पिचकारी की मार बड़ी आड़ी-तिरछी,
कैसी बही बयार सखी, सीली-सीली,
दइमारे! कर दी अँगिया गीली-गीली,

बौरों के कोनों में नये टिकोरे हैं,
अभी आम के अधर अछूते कोरे हैं,
कान्हा के कानन का कुंज-वितान दो,
वंशी के स्वर में पिछली पहचान दो,
शरमाई साँसों की छलकन गागर में,
आओ छिप जाएँ अबीर की चादर में,
होली में सब कूड़ा-करकट जलता है,
नवयुग का शिशु लपटों बीच मचलता है,
ज्वाल बिना जीवन होता आबाद नहीं,
दहन बिना प्रह्लादों को आह्लाद नहीं,
नई आग ने जीवन की जय बोली है,
नये देश की नई-नई यह होली है,
इसीलिए जर्जरित जलाकर राख करो,
उसी राख में नये फ़सल की शाख धरो,
भस्म-राशि को खेल-खेल में धूर करो,
नये जमाने के रोधों को चूर करो,
बारूदों के धूम-धड़ाके लाओ मत,
एटम के डामर से अब डरपाओ मत,
कुसमय की मत बात सुनाओ मंगल में,
हल्का लाल अगस्त्य खिल गया जंगल में,
चम्पे की भीनी सुगंध का क्या कहना?
मधुपों की नुक्ताचीनी का क्या कहना?
आओ आज प्यार करलें फिर प्यार को,
इसी रंग में रंग दें सब संसार को,
अब तक जैसी उसको ऐसी-तैसी हो,
पंचों की है राय पञ्चमी ऐसी हो।

आसों आम बहुत बौराए

मधु-माधव की डाल-डाल पर
काम-विशिख से छूटे,
कोयल के अरमान आम के
रोम-रोम से फूटे,
मधुऋतुपति के राजमुकुट पर
कलँगी से लहराए।

नये टिकोरों की छलना में
छैल-छबीले भटके,
पुञ्ज-पुञ्ज अभिलाषाओं के
गुच्छे-गुच्छे लटके,
होड़ लगी है सबसे पहले
कौन सोप गदराए ?

कनक--कसैली गन्ध गमकती
बन-बन, वीथी-वीथी,
किसकी मटकी छलक उठी है
किसकी रीती-रीती ?
मदन महोत्सव में कितना मधु,
मुग्ध रसाल लुटाए ?

वड़ी वावरी ऋतु आई है
जो देखे बौराए,
तपे मृगसिरा तब अंतस का
रस सीझे, मधुराए,
अल्हड़ चैत, कोयलिया बौरी
कौन किसे समझाए ?

फूला-फला रसाल झेलता
लू-लपटें अंग-अंग में,
बौराने का मौसम लाता
दाह-जलन संग-संग में
जले जेठ, वैसाख,
पथिक का पथ रसमय हो जाए।
आसों आम बहुत बौराए ।



आ गया वसन्त

आ गया वसन्त बह चला समीर मंद-शिथिल
मधुर, मधुर, मधुर।
फिर पलाश डाल-डाल लाल लौ जली,
आम्र की उमंग अंग-अंग में पली,
पात-पात झूम चूमता कली-कली,
गंध-अंध गुनगुना उठा मधुप मचल-मचल
किधर, किधर, किधर!
बेकली विकास की किसे खली न रे,
निखर-निखर बिखर उठे बौर बावरे,
अमलताश की हुलाश ज्वाल-सी जरे,
मंद-मंद मधु मलय बहा कि पिक पुकारती फिरी विकल
विधुर, विधुर, विधुर।
कर्ण कर्णिकार, कवरि कुरबकों भरी
कुंद-इंदु मल्लिका विसुध विहँस पड़ी
पुलकिता प्रियंगु, चल अशोक मञ्जरी,
चम्पई सुवास स्वर्ण-अंगना अनंग परस से उठी पुलक
सिहर, सिहर, सिहर।
लहकता गुराँस ललक लास से भरा,
लुब्ध मुग्ध क्षुब्ध बावरी वसुंधरा,
छलकता पराग-चषक जब भरा-भरा,
राग-रंजिता सुरति-सलज्जिता सखी से छेड़छाड़ तो छयल
न कर, न कर, न कर।
आ गया वसन्त बह चला समीर मन्द-शिथिल
मधुर, मधुर, मधुर।

अड़चन

तुम तो उधर पीठ कर बैठी
मैं किसको देखूं ?

ये थोड़े-से क्षण जीवन के
सकुचे सिहरे हैं,
यह यश का अभिशाप कि
सबकी मुझ पर नजरें हैं,

क्या लुटना है पाप
मुग्ध-मन के संवरणों पर ?
गाज गिरे गौरव के
गर्वीले आवरणों पर,

यह तो इक संयोग कि
पथ चलते तुम दीख पड़ीं,
सूनी आंखों में काजर की
रेखा-सी उभरीं

आंखें हो तो है मनरंजन
खंजन बनती हैं,
पांखे ही तो हैं, शोभी की
लौ पर तनती हैं,

इसीलिए चन्दा की कनखी पर
न्यौछावर मैं—
लुका-छिपी किरनों की बादल में
कब तक लेखूं ?
गो चुप-चुप लाचार
विवशता पर सिर धुनता हूँ,
साँसों के उभार की आहट
तो सुन सकता हूँ,
केले के पत्ते पर नागिन
जब लहराती है,
पास तुम्हारी धड़कन की
अड़चन आ जाती है,
भीतर मन की गाँठ शिथिल-सी
जब सुलझी होगी,
बाहर बरबस बिखर-बिखर
कबरी उलझी होगी,
सुलझाने-सुलझाने में
जो सिमटी जाती हैं,
बिखर-बिखर लुट जाने में
जो लिपटी जाती हैं,
ऐसी उलझी-सुलझी
पहेलियों पर पागल मैं—
मातें-मनुहारों की छवियाँ
किस पथ पर रेखूं ?

प्रिय, तुम्हारी तपन तो वरदान है

व्यर्थ बरसों दर-बदर मारा फिरा,
व्यर्थ आशा से लगाया आसरा,
एक उलझन से सुलझने के लिए
जाल के जंजाल में फँसना पड़ा।

रात की काली लटों में लिपट कर
एक दीपक मुस्करा कर कह गया—

श्रमा में ही ज्योति का संधान है।
प्रिय, तुम्हारी तपन तो वरदान है।

प्यास मादक श्वास बन छलती रही,
एक बेचैनी विवश पलती रही,
शब्दहीन पुकार-सी सिहरन भरी
लौ किसी के रूप की जलती रही।

खिलखिलाते तारकों से रूठकर
एक जलता नखत टूट बिखर गया—

चाँद तो भूला हुआ मेहमान है।
प्रिय, तुम्हारी तपन तो वरदान है।

तुम सिसकती श्वास के उच्छ्वास हो

तुम न मिलते तो
विरह का सुख न पाता जान मैं,
तुम न खिलते तो
मधुप-सा कर न पाता गान मैं,
तुम ललकते प्राण की मधुप्यास हो,
इतना बहुत है।

तुम हँसे तो
रुदन को उत्सर्ग का संबल मिला,
तुम छिपे तो
खोज को भी खोजने का बल मिला,
तुम संजोई आस के विश्वास हो,
इतना बहुत है।

देख तुमको मुस्कराई
चाँदनी नव-षोडसी,
एक आँसू सिंधु से
करने लगा था होड़-सी,
मूक मिट्टी में समर्पण-
चाव उमड़ा चौगुना,
मैं तुम्हारी अर्चना में
आरती की लौ बना,
तुम जलन की ज्योति के इतिहास हो,
इतना बहुत है।

भूलों का प्रायश्चित्त करो

भूलों का प्रायश्चित्त करो मेरे मन
शूलों में फूलों का सौन्दर्य सँवारो।

जीवन की पगडण्डी टेढ़ी-मेढ़ी है
पग-पग पर फिसलन से गिरने का डर है,
खूँखार भेड़िए रथ की राहें रोके
कान्तारों में फुफकार भरे गह्वर हैं।

पथ की दूरी को काट-छाँटना मुश्किल,
रथ के घोड़ों को चाहिए दाना-पानी,
यों ही पड़ाव में डेरा करते-करते
हो जाए न जीवन-गाथा नयी पुरानी।

इसलिए छोड़ विश्राम कमान सम्हालो
सूरज-चन्दा से गति की होड़ लगाओ,
पथ में जब चीखें स्यार, दहाड़ें बब्बर,
तब ऊर्ध्व कण्ठ से निर्भय गाना गाओ।

मन की बेफिक्री सबसे बड़ी नियामत,
मन की कदराई सबसे बड़ी कयामत,
बालू से काढ़ो तेल, बियावानों में
बस्ती के दीपों का जाज्वल्य उभारो।
दुर्दमन तपन से तन के पीले पत्ते
झरने दो जिससे विखरे मन की क्यारी,
अंतसलिला से सींचो उर का ऊसर
फूले फैले उत्सर्गों की फुलवारी।
मंजिल तो जानें किसने देखी-जानी
जीने का एक बहाना ही मिल जाए,
जिस पौधे को जीवन-भर पाला-पोसा
अंतिम साँसों के साथ-साथ खिल जाए।
जीवन फल-सा पक जाय, दूसरे खाएँ,
रिस-रिस कर रस का मादक सार लुटाओ,
जो बीज मिल गया था मिट्टी में गल कर
उसकी मिट्टी को फिर से बीज बनाओ।
विश्वास विश्व का सबसे उज्जवल जौहर,
पौरुष धरती की सबसे बड़ी धरोहर,
मनु के दीपक का स्नेह न चुकने पाए
जड़ रजकन का चेतन सौकर्य उभारो,
भूलों का प्रायश्चित्त करो मेरे मन
शूलों में फूलों का सौन्दर्य संवारो।

सन्ध्या का संदेश

संध्या की लाली मुझको पी लेने दो,
जीवन का यह क्षण जीभर जी लेने दो।
यह सूरज का सार प्यार जी भर चक्खो,
आँखों के अधरों पर उंगली मत रक्खो।
अभी अँधेरे को कुछ ज्योति बाँटनी है,
इसके बल पर सारी रात काटनी है।
भर लो इसका राग पिया की पाती में,
भर लो इसकी आग दिया की बाती में।
भर लो इसका मद तारों की आँखों में,
छोटो कुछ छींटे जुगनू की पाँखों में।
भर लो शीतल ज्वाला शशि के अंचल में,
परछाईं भर लो सरिता के कल-कल में।
वीणा के तारों में राग विहाग भरो,
मंडप के नीचे सपनों की माँग भरो।
तम के सागर में सम नौका खेना है,
संध्या का संदेश ऊषा को देना है।

प्रभात की किरण

मैं आँखें मलता था अलसाया-सा,
बीती के सपनों में भरमाया-सा,
कुछ अनहोनी-सी आज हो गयी रे,
मुझको प्रभात की किरन छू गयी रे।

जब तक सोचूं क्या हुआ एक छिन में,
वह एक अनी-सी पैठ गयी मन में,
बाहर अम्बर आतुर अभिलाषा-सा,
भीतर कुछ कटने लगा कुहासा-सा,

अनजान कल्पना ने अँगड़ाई ली,
चिड़ियों की पहली चहक सुनाई दी,
झंकार ढली मीठी शहनाई-सी,
सुकुमार उंगलियों से सहलाई-सी,

अन्तर में ढलता लावा-सा दुर्धर
कछ लगा सालने अन्दर ही अन्दर
अब जन्म-जन्म की नींद खो गयी रे,
मुझको प्रभात की किरन छू गयी रे।

पहले भी तो प्रभात आता ही था,
जग में स्वर्णिम प्रकाश लाता ही था,
अम्बर अवनी पर राग लुटाता था,
ऊपर-ऊपर मुझको भी भाता था,

यह किरन निगोड़ी कहाँ छिपी थी पर,
जो लुटा गई मुझ पर सपनों के स्वर,
रोने-धोने की कोई बात नहीं,
अब तो मरना भी अपने हाथ नहीं,

अब अन्धकार के चिर-दुराव से क्या ?
अब हार-जीत के मोल-भाव से क्या ?
अन्तर में कोई ज्वार भर गया रे,
मैं बिना नाव के सिन्धु तर गया रे।

मन-मोती की सौगात लुट गयी रे,
मझको प्रभात की किरन छू गयी रे।



लज्जा रक्खो

तुमने इतना मान दिया है तो लज्जा रक्खो।

नश्वर साँसों में अनन्त उत्सर्गों की समिधा
अन्तर में निर्घूम अग्निमय लपटों की वेदी,
अलसाई आँखों में भर दी सपनों की थाती,
नौसिखिया हाथों में तुमने बाँसुरिया दे दी।
तपी-तपाई सीझी-साझी रसवारी माती
वृन्दावन के विमल वंश के भीटे से काटी,
सोरह सहस गोपिकाओं की पीर लिए उर में,
जाने किस जादू से मुखरित हुई मूक माटी।
मतवाली मीरा-सी पीरा गरल सुधा करती
छैल छबीले किसी छली के अली अंश-सी है,
इसके रंध्रों में राधा की परम विरह भाषा
नयी नवेली लगती लेकिन उसी वंश की है
इसे बजाऊँ तो बजता है तार-तार तन का
रक्तशिराओं में नागिन-सी लहरें मार रही,
:इसकी डसन न मौका देती पानी माँग सकूँ
फूँक-फूँक में मौत सौत-सी रूप सँवार रही।

जिसका ज़हर ज़िन्दगी देता उसकी बलिहारी
जीने-मरने को क्या इतना संबल कुछ कम है ?
नाव उम्र की झोले खाती जिन हल्कोरों पर
आँखों के खारे पानी में उनका संभ्रम है।
तुमने जो कुछ दिया उसे किस अंचल में बाँधूं
जीवन तो स्वर पर न्यौछावर होने का आदी,
बाहर-भीतर रास हो रहा शरद पूर्णिमा का
ज्योतिर्मय वरदान दे गया अम्बर आह्लादी।
अब बिखरूँ तो शून्य हमारा भय संशय किसका
एक तुम्हीं में लय होने की साध रही बाकी,
मेरे स्वर पर सबका दावा धन्य हो गया मैं
मन वृन्दावन केलिकुंज की पुतली में झाँकी।
अब घनश्याम घिरो जीभरकर जीवन भरो भरो
चीर-हरण हो गया हृदय का इतना और करो

मेरे अधरों पर द्वापर की स्वर-सज्जा रक्खो
तुमने इतना मान दिया है तो लज्जा रक्खो।



शबनम

रात आई कि याद साथ लिए आती है
बात की बात में बरबाद हुई बाती है।
स्नेह के तार पै दीपक की जलन निर्भर है
प्यास को प्यास पिए जाती है।

जिन्दगी जीत है, विश्वास है, तय्यारी है,
मौत विश्राम है, संघर्ष की लाचारी है।
यों तो कंधों को हिमालय का बोझ भी हल्का
प्यार का भार बहुत भारी है।

प्यास है, ओस को बूंदें ही पिए लेता हूँ
रात है, देख के तारों को जिए लेता हूँ।
तुम नहीं दे सके मिट्टी को भरोसा लेकिन
मैं तुम्हें चांद की मुस्कान दिए देता हूँ।

आज आए न तुम चलने के समय आओगे
फूल की क़द्र न की धूल पै इतराओगे ?
गीत ये तुमको सुनाने को नहीं लिक्खे हैं
इनको शायद कभी सूने में गुनगुनाओगे।

होठ कँप-कँप गए पर शब्द नहीं कढ़ पाए
माँगने को हुए पर हाथ नहीं बढ़ पाए।
दिल धड़कता रहा भौहों पै शिकन तक न पड़ी
चाह के चित्र थे पुतली पै नहीं चढ़ पाए।

आँख दी देखने को फिर तो था निबाह नहीं
आपको देखा तो कोई किया गुनाह नहीं।
हर लहर के जुबान हो तो आप भी जानें
आँख के पानी की दुनिया में कोई थाह नहीं।

मानता हूँ न मनाने से आप आएंगे
मैं कहूँ बात मगर आप न सुन पाएँगे
आपको पाने से ज्यादा मुझे खोने का खयाल
आप आए तो दौरे-दर्द चले जाएँगे।

जिन्दगी हर जगह बिखरी सकेल लो साथी
आज अरमानों से खुलकरके खेल लो साथी।
बूँदें दो प्यार की मिल जाँय जो भूले-भटके
हज़ार बूँदें हलाहल की झेल लो साथी।

आँख हिलती है तो सब आसमान हिलता है
प्यार खिलता है तो सारा जहान खिलता है।
खोज को खोज के खोजा यही मैंने अब तक
खुद को खोकर ही खुदी का मकान मिलता है।

चाँद तुमने चाँदनी की राग रस बनकर चुग्रा
एक धब्बे से मगर मुखड़ा तुम्हारा हत हुग्रा।
कालिमा ग्रपने कपोलों की मुझे दे दो सुभग
ग्राँख की पुतली तुम्हें सौ साल तक देगी दुग्रा।

ग्रभ्र की ग्राँखें छलकतीं मौन जब
सब्र का ही सबक़ देता पौन तब।
होठ पर पी-पी लिए पपिहा मिटा
प्यास का इंसाफ़ लेगा कौन ग्रब ?

ग्राँख ग्रनकहनी कहानी कह गई
साँस सूनापन सिसक कर सह गई।
बात जीवन भर तुम्हारी की मगर
बात इतनी, बात ग्राधी रह गई।

कुछ पहले-पहले ग्राज न दुनिया छली गई
फूलों के मुख पर सदा धूल ही मली गई।
बाँहें फैलाकर पुलिनों ने सरिता से माँगा ग्रालिंगन
प्रिय, ग्राज नहीं, कल-कल कहती वह चली गई।

नैन का नीर नमन था बहा-बहा न बहा
पीर का तीर शमन था सहा-सहा न सहा।
राह के रोर हमीं थे रहे-रहे न रहे,
दर्द के दौर तुम्हीं थे दहे-दहे न दहे।

ललक की लाचारी

आई किसी की याद तो आती चली गई
छाई घटा नयन में तो छाती चली गई।
दो बूंद से अधिक न पपीहे की प्यास थी
पानी भरी पुकार जलाती चली गई।

सीपी पड़ी समुद्र में प्यासी बनी रही
अंतर की आग आब ढलाती चली गई।
बाहर किसी ने बात न पूछी बहार में
भीतर किसी की टेर बुलाती चली गई।

बौराए बाग ने न हूक कूक की बूझी
छिप-छिप के लजीली पिकी गाती चली गई।
जलने की ललक लेके पतंगा पड़ा रहा
आया जो स्नेह दीप में बाती चली गई।



उधेड़बुन

जीवन के जंजालों से जी घबराता है,
औरों से क्या अपने से भी कतराता है।
व्याकुल होता, रोता, गाता, चिल्लाता है
संघर्षों की चिता को चिता बताता है।
मैं सोच रहा यदि पथ में न हो परेशानी
जीवन सीधा सपाट सुथरा-सा सैलानी।
तो पग आगे बढ़ने को क्यों अकुलाएँगे ?
अवरोध नहीं होगा तो किसे ढहाएँगे ?
अंगारे किसकी शीतलता सुलगाएँगे ?
आँसू किसकी मीठी मुस्कान चुराएँगे ?
कैसे सागर का उमड़ा ज्वार जुटाएँगे ?
रेगिस्तानों में कैसे रस बरसाएँगे ?
नभ की नीली चुप्पी का मौन मिटाएँगे
चंदा के घर का राज़ किस तरह पाएँगे ?
मंगल ग्रह में मंडप कैसे बनवाएँगे
संध्या के सिर कैसे सिंदूर सजाएँगे ?
शबनमी सितारे कैसे ढलवा पाएँगे
अनबींधे मोती कैसे गुहवा लाएँगे ?
सीधी बाँहों से कैसे गले लगाएँगे ?
सीधी राहों से कैसे मंज़िल पाएँगे ?

लेखनी की जिम्मेदारी

कहते हैं दुनिया आनी-जानी है
कहते हैं जीवन बहता पानी है।
कहते हैं अनगढ़ रीति जवानी है
कहते हैं असफल प्रीति कहानी है।
कहते हैं पथ की धूल रवानी है
कहते हैं चुभता शूल निशानी है।
कहते हैं बादल अवघड़दानी है
लेकिन प्यासा चातक भी मानी है।
यों तो डाली पर नित्य सुमन खिलता
मानव जीवन हर बार नहीं मिलता।
जो मिल जाता है सस्ता लगता है
जाने लगता तव मोल उभरता है
जब चला गया तो रोना-गाना क्या?
चिड़िया चुगने पर फिर पछताना क्या?
इसलिए बिखरने के पहले चेतूं
डाली से झरने के पहले चेतूं।
चुभती रहती प्रतिपल प्रज्ञा पैनी
मुझको हर क्षण जीने की बेचैनी।

ये सब अपने छाया-प्रकाश के घन
गतिपथ पर बनी बैलगाड़ी इंजन।
कितनों को इसके लिए पड़ा तपना
साकार हुआ तब सदियों का सपना।
लेकिन इस युग ने अपनापन खोया
गोदी में आत्मज लिए मनुज रोया।
लगते हैं सब स्वार्थों के जाए-से,
ये ज्ञान और विज्ञान पराए-से।
सत्संग राहु का किया चन्द्र-रवि ने
भस्मासुर को वरदान दिया शिव ने।
हो गया प्रगति का पथ जर्जर धीमा
शापित नागासाकी हीरोशीमा।
दम घोंट रही है युग की लाचारी
इसलिए लेखनी की ज़िम्मेदारी,
जो दिखा उसे कहने की ताकत दो
जो लिखा उसे रहने की ताकत दो।
कविता-अविता तो होती रहती है
पत्थर पिघले तब गंगा बहती है।
गंगा है तो ऊसर भी उर्वर है
नंदन वन भी धरती पर निर्भर है,
इसलिए भगीरथ का तप मुझको दो
इसलिए दाशरथि का व्रत मुझको दो।
मैं शिवि-दधीचि का साहस जुटा सकूँ
मैं शेषनाग का बोझा उठा सकूँ।

इसलिए धरित्री का कण-कण प्यारा
इसलिए ज़िंदगी का क्षण-क्षण प्यारा।
चाहे सुषुप्ति हो, जागृति हो, सपना
कुछ भी न पराया यहाँ सभी अपना।
सूरज-चन्दा-तारों की कल छलना
यह धरती अपनी आसमान अपना।
दूर्वा, द्रुम, विटपी, लता, गुल्म झाँकी
सर, सरिता, सागर, निर्झर गति बाँकी।
गिरि गह्वर, बीहड़, बियावान जंगल
सब सगे सहोदर सत्य सुघर मंगल।
खंजन, कपोत, शुक, मोर, लवा, बुलबुल
मनके अनेक हैं तार एक अविकल।
बेला, जूही, मालती, कदंब, बकुल
सब एक भ्रमर के गुंजन से चंचल।
उपवन, बीथी, अमराई, मरु, ऊसर
खलिहान, खेत, ढुर्री, कछार, पटपर
हँसिया, कुदाल, खुरपी, गेंती, रंदा
हल, बैल-गाय, गोरू गोरख-धन्धा।
जिन आविष्कारों पर सभ्यता पली
ये रेल, तार, रेडियो, फ़ोन, बिजली।
ये वायुयान, जलयान, अनगन भ्रम
ये टैंक, टारपीडो, अणु-उद्जन बम।

ये सब अपने छाया-प्रकाश के घन
गतिपथ पर बनी बैलगाड़ी इंजन।
कितनों को इसके लिए पड़ा तपना
साकार हुआ तब सदियों का सपना।
लेकिन इस युग ने अपनापन खोया
गोदी में आत्मज लिए मनुज रोया।
लगते हैं सब स्वार्थों के जाए-से,
ये ज्ञान और विज्ञान पराए-से।
सत्संग राहु का किया चन्द्र-रवि ने
भस्मासुर को वरदान दिया शिव ने।
हो गया प्रगति का पथ जर्जर धीमा
शापित नागासाकी हीरोशीमा।
दम घोंट रही है युग की लाचारी
इसलिए लेखनी की जिम्मेदारी,
जो दिखा उसे कहने की ताकत दो
जो लिखा उसे रहने की ताकत दो।
कविता-अविता तो होती रहती है
पत्थर पिघले तब गंगा बहती है।
गंगा है तो ऊसर भी उर्वर है
नंदन वन भी धरती पर निर्भर है,
इसलिए भगीरथ का तप मुझको दो
इसलिए दाशरथि का व्रत मुझको दो।
मैं शिवि-दधीचि का साहस जुटा सकूं
मैं शेषनाग का बोझा उठा सकूं।

नया मोड़

नया मोड़ इतिहास ले रहा
आगे कदम बढ़ाओ।
अरुणोदय के पुण्य प्रहर में
बिस्तर पर मत लेटो,
अँगड़ाई लेकर उठ बैठो
बिखरा स्वर्ण समेटो।

खड़े खेत में झपकी मत लो
नींद खुमारी त्यागो,
मेड़ न बाँधो, बाड़ न रोपो
रात-रात भर जागो।

एक दशक में सदियों का
सारा अभाव भरना है
नये देश की नयी फ़सल की
रखवाली करना है।

कितनी क़ुरबानी के बल पर
नया सबेरा लाए,
ग़ाफ़िल मत हो क्रांति
द्वार तक आकर लौट न जाए।

जगो पहरुए, नचिकेता की
अग्नि जलो लासानी,
प्रतिक्रिया के दस्यु डाल दें
कहीं न उसमें पानी।
सदियों के पाले-पोसे
अरमान नहीं खो जाएँ,
जोते-बोए खेत कहीं
वीरान नहीं हो जाएँ।
भेड़-बकरियाँ, अरने-भैंसे
ऊँट उठाए गरदन,
फ़सल हमारी चर जाने को
ताक लगाए हरदम।
अपने घर में सानी-बूसा
सड़ा करे मनमाना,
इनका काम यही है
औरों की खेती चर जाना।
इसीलिए कहता हूँ
बिखरी चिन्गारियाँ बटोरो,
छोटे-मोटे मतभेदों को
गंगाजी में बोरो।
विश्व शांति के अभियानों का
हम तो दम भरते हैं,

मोर्चे पर सैनिक नाहक
वकवास नहीं करते हैं।
सदियों तप-तप कर तुमने
जो जीवन ज्योति निखारी,
नये एशिया पर आई है
उसकी ज़िम्मेदारी।
शक्ति साधको, अब ग़ाफ़िल
होने का काम नहीं है,
इस पीढ़ी को पल भर भी
पथ पर विश्राम नही है।
कहाँ गए हल-बैल तुम्हारे
ट्रैक्टर औ' बुलडोजर,
तोड़ो खेतों को मेड़ों को
जोतो अवनी-अम्बर।
मरु-थल जोतो, ऊसर जोतो
जोतो बजर परती।
सोने-चाँदी की फ़सलों से
भर दो सारी धरती,
जाति वर्ग की छोटी-मोटी
दीवारों को तोड़ो,
मानवता का फ़ार्म बनेगा
गोड़ो, मिट्टी गोड़ो।

कंकड़ फूटो, वजरी-पीसो
चट्टानों की तोड़ो,
वीहड़ में जनमार्ग बनाओ
सरिताओं को मोड़ो।
उठो सिंधु का ज्वार समेटे
चन्दा की लट चूमो,
तारों के संग रास रचाओ
तूफानों में झूमो।
ववण्डरों के संग बौराओ
धूमकेतु को धारो,
प्रलयंकरी बाढ वर्षा में
मनु की नाव उबारो।
नयी सृष्टि का सयोजन है
असुरों को ललकारो,
नयी मानवी के अंतस की
श्रद्धा-सुधा सँवारो।
उपनिषदों का नया संस्करण
मुद्रित आज कराओ,
जगा सको तो बंधु
मशीनों का अध्यात्म जगाओ।
फ़ैक्टरियों की ऊर्ध्व चिमनियों की
आत्मा पहचानो,

दग्ध भट्टियों की दहकन में
ब्रह्म तेज अनुमानो।
इसी ब्रह्म के तप से पिघलेगी
हिमगिरि की चोटी,
यही ब्रह्म बाँटेगा घर-घर
फिर से माखन-रोटी।
इसी ब्रह्म की बाँसुरिया पर
युग का राग ढलेगा,
जिसकी लय पर उजड़ा ब्रज
फिर दूधो-पूत फलेगा।
जब छलकेगी दूध दही से
ग्वालिनियों की मटकी,
निखारेगा छैल कन्हैया
उलझी गाँठें लट की।
केशों का विन्यास स्नेह बिन
रूखा नहीं रहेगा,
तन की भूख मिटेगी तो
मन भूखा नहीं रहेगा।
चिन्ताओं की चंचलता के
झोंके सहम थमेंगे,
बाहर शांति, समृद्धि बसे तो
भीतर राम रमेंगे।

शत्रु नहीं विज्ञान तुम्हारा
संकट का साथी है,
यह भी ऋषियों के चिन्तन का
रस है, परमार्थी है।
यह भौतिकता का नव
आध्यात्मिक स्तर साज रहा है,
हर प्रयोगशाला में
ज्योतिर्ब्रह्म विराज रहा है।
सिंधु-गर्भ से इन गोताखोरों ने
बीने मोती,
मानवता के त्राण हेतु पीढ़ियाँ
निछावर होतीं।
ये घर-घर में खुदवा देंगे
निर्मल मानसरोवर,
मोती का अभाव हंसों को
नहीं खलेगा पलभर।
सतयुग के सत का आवाहन
आँच-आँच में रांचो,
आज नया इन्सान ढल रहा
इस साँचे को जाँचो।
हाय, हाय, चिल्लाने से
गति का रथ नहीं रुकेगा,

मानवता के पुरुषार्थों का
झंडा नहीं झुकेगा।
तपते-तपते जब तापक्रम
सीमा छू लेता है,
अणु की शक्ति प्रकट होती है
जड़ चेतन होता है।
इस विज्ञान भगीरथ ने
कुछ ऐसा अनुमाना है,
नभ से नहर निकाल
दूध की गंगा को लाना है।
इसके पहले खाद डालकर
युग का खेत कमा लो,
संकल्पों के शिव से
धारा का धारण धरवा लो।
जिस दिन नयी क्रांति
ढालेगी स्वर्गंगा का पानी,
ढह जाएँगे बड़े-बड़े
अवरोधों के गढ़ मानो।
यज्ञ-अग्नि के तप:धूम से
मघवा को आराधो,
मानव ममता के स्रोतों के
नये बाँध अब बाँधो।

खाई खंदक खाल
पोखरों गड्ढों को भरना है,
ऊँची-नीची धरती का
विघटन समतल करना है।
सामूहिक खेती होगी अब
सामूहिक श्रमदान,
संगच्छध्वं संवदध्वं संवो
मनांसि जानताम्।
गांधी-सागर का जल
नेहरू की नहरों में ढालो,
शांति प्रेम संबोधि वृक्ष
फिर भारत में पनपा लो।
इसकी कलमें देश-विदेशों को
भेजी जाएँगी,
प्रियदर्शी अशोक की
गौरव गाथा दुहराएँगी।
नई फ़सल बोने का दिन है
ज्योति बीज बिखराओ,
नया मोड़ इतिहास ले रहा
आगे क़दम बढ़ाओ।

युग की गायत्री

हर क्यारी में पदचिह्न तुम्हारे देखे हैं
हर डाली में मुस्कान तुम्हारी पाई है,
हर काँटे में दुख-दर्द किसी का कसका है
हर शबनम ने जीवन की प्यास जगाई है।

हर सरिता की लचकीली लहरें डसती हैं
हर अंकुर की आँखों में कोर समाती है,
हर किसलय में अधरों की आभा खिलती है
हर कली हवा में मचल-मचल इठलाती है।

अम्बर में उगतीं सोने-चाँदी की फसलें
ये ज्वार बाजरे की मस्ती लहराती है,
अन्तर में इनका बिम्ब उभरता आता है
चाँदनी सिन्धु में सौ-सौ ज्वार जगाती है।

मैं कैसे इनकी मोहकता से मुख मोड़ूँ,
मैं कैसे जीवन के सौ-सौ धंधे छोड़ूँ,
दोनों को साथ लिए चलना क्या संभव है ?
तन का मन का पावन नाता कैसे तोड़ूँ ?

क्या उम्र ढलेगी तो यह सब ढल जाएगा
सूरज चन्दा का पानी गल जल जाएगा,
जिनके बल पर जीने-मरने का स्वर साधा
उनका आकर्षण साँसों को छल जाएगा।

जिस दिन सपनों के मोल-भाव पर उतरूंगा
जिस दिन संघर्षों पर जाली चढ़ जाएगी,
जिस दिन लाचारी मुझ पर तरस दिखाएगी
उस दिन जीवन से मौत कहीं बढ़ जाएगी।

इन सबसे बढ़ कर भूख बिलखती मिट्टी की
पथ पर पथराई आँखें पास बुलाती हैं,
भगवान भूल में रच कर जिनको भूल गया
जिनकी हड्डी पर धर्म-ध्वजा फहराती है।

इनको भूलूं तो मेरी मिट्टी मिट्टी है
मेरी आँखों का पानी केवल पानी है,
इनको भूलूं तो मेरा जन्म अकारथ है
मेरा जीना मरने की मूक कहानी है।

मैं देख रहा हूं तुम इनको फिर भूल चले
बातों-बातों में हमें बहुत बहलाते हो,
बेबसी चीखती जब बच्चों की लाशों पर
उसको आजादी की प्रतिध्वनि बतलाते हो।

यों खेल करोगे तुम कब तक असहायों से
कब तक अफ़ीम आशा की हमें खिलाओगे,
बरबाद हो गई फ़सल कहीं जोती बोई
क्या बैठ अकेले ही मरघट पर गाओगे ?

विश्वास सर्वहारा का तुमने खोया तो
आसन्न मौत की गहन गाँस गड़ जाएगी,
यदि बाँध बाँधने के पहले जल सूख गया
धरती की छाती में दरार पड़ जाएगी।

सदियों की क़ुरबानी यदि यों बेमोल बिकी
जमुहाई लेने में खो गया सवेरा यदि,
जनता पूर्णिमा मनाने की जब तक सोचे
घिर गया अमावस का अम्बर में घेरा यदि।

इतिहास न तुमको माफ़ करेगा याद रहे
पीढ़ियाँ तुम्हारी करनी पर पछताएंगी,
पूरब की लाली में कालिख पुत जाएँगी
सदियों में फिर क्या ऐसी घड़ियाँ आएँगी।

इसलिए समय के सैलाबों को मत रोको
खुशहाल हवाओं में न खिड़कियाँ बन्द करो,
हर किरण जिन्दगी की आँगन तक आने दो
नव-निर्माणों की लपटों को मत मन्द करो।

इस नए सवेरे की लाली को देखो तो
इसकी अपनी कितनी पहचान पुरानी है,
भू, भुवः, स्वर्ग को एक बनाने आई जो
युग की गायत्री सब छन्दों की रानी है।

बिखरी पँखुरियाँ

जहाँ मुंज की मौज मृणालवती की बनती कारा
सरस्वती ने कण्ठ-ग्राभरण था जिस जगह सँवारा
जहाँ भोज को खोज रही है गिरा कई सदियों से
सुधामयी धारा नगरी में फिर उमड़े रस धारा।

× × × ×

हमारे बाग़ में गर प्यार के अंकुर नहीं फूटे, नहीं फूले,
हमारी शाख पै मनुहार के पंछी नहीं झूले, नहीं झूले,
न पोंछी डबडबाई आँख तारों की तमिस्रा ने
मगर हम किरण की मुस्कान को फिर भी नहीं भूले, नहीं भूले।

× × × ×

तुम्हारे तार पै दौड़ा हुआ मैं आज आया हूँ
कि विंध्या को हिमालय की दुआ औ' प्यार लाया हूँ

मिलें दिल तो हज़ारों कोस की दूरी निरर्थक है
किसी की श्वास में निश्वास बन कर मैं समाया हूँ

चेतना का मूल

दूर कहीं अन्धड़-सा उठ रहा है दुर्निवार।
दिग्वधुएं ध्वांत-भ्रांत
अम्बर को निगल रहा अन्धकार का प्रसार
ग्रह-उपग्रह श्रांत-क्लांत
गड़गड़ा रहा है व्योम
घरघरा रहा है सिन्धु
हरहरा रहा है तम-तोम में विराट वट
प्रान्तर का प्रहरी-सा निर्विकार।
प्रलय मेघ घटाटोप
फटले मूसलाधार
अन्धकार ज्वार बना
ज्वार बना अन्धकार।
लहरों पै लहर टूट
उठतीं भूधराकार
पानी भी परशुधार के
प्रहार पर प्रहार।
अररर छाः अररर छा
माटी के बन्धन सब काट रही धार-धार
जीर्ण-शीर्ण जर्जर कंकाल जाल जड़ उघाड़ तोड़ हाड़,

स्नेहमयी माँ के जिस बन्धन से
बन्धा रहा आज तलक
छिन्न वही तार-तार,
छाती से चिपकाए रही जो युगावधि से
मूक-मुग्ध
बिछुड़ा उसका दुलार,
फिर भी वह खड़ा रहा ज्यों का त्यों
निर्भय, निश्चल, निशंक,
द्यावा और पृथ्वी के निर्जर अजेय तत्त्व
अपरिमेय सत्व-सा विराट अंक।
कैसा खड़ा ? किसके सहारे ?
यह व्यर्थ कथा
सत्य यही
आज भी तना उस वट-पादप का महाकार
जीवन का सहज धर्म उसको रहा संभार।
मेरुदण्ड तान वह खड़ा, अड़ा सहस्रबाहु
धार रोक रेवा की
धँसा दिए अपने सहस्रों भुज धरती में
प्लावन के प्रश्नों के उत्तर-सा साकार,
जल क्रीड़ा उमड़ी उद्दाम वासनास्वरूप
पौरुष का पुरस्कार।
जानता है एक दिन पूरा हो जाएगा

व्यक्तिधर्म, युगधर्म
धर्म की शृंखला में कड़ी जुड़ जाएगी
छितराएगी छाती वसुंधरा की स्फुलिंग-सी
जहाँ-तहाँ दीरघ दरारें पड़ जाएंगी।
किन्तु आज सोचे कौन, मोचे कौन अश्रुबिंदु
ताप तप्त, शापग्रस्त, स्वप्न-भंग
उठने लगी तरंग पै तरंग,
लाखों फन फैलाए फूत्कार छोड़ता
ग्रसने चला प्रलयाब्धि
क्षुब्ध क्रुद्ध।
सोचने का समय नहीं
'गतासून गतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः'।
भले हुई क्षीण शक्ति
मन्द श्वास,
किन्तु इस चुनौती को जिसने स्वीकारा
उस साहस की जय हो।
चलता रहा क्रम अटूट
तोड़ता कगारों को
सागर घहराता रहा
मिट्टी के रहे-सहे
तार तड़तड़ाता रहा
लहरों की टक्कर से बड़वानल भभक उठे
पानी बने आग तो प्रदाह से बचाव कहाँ ?

होड़ हुई मिट्टी और पानी में
तत्व की तत्व से
कारण की कारण से
वट तो है कार्यमात्र ।
किन्तु ज्योंही घुलने लगे
मिट्टी के आधार तत्व
जड़ें लगीं जल के अन्तस में पसरने
अतल-तल-वितल भेद
छेदतीं रसातल को
हो गईं समूल मुक्त ।
वट आधारहीन
अधपर लहराने लगा
प्रलय पयोधि पै विमुक्त विजयकेतु-सा ।
हारे थके यत्न विफल देख
वरुण कुपित हुए,
लहर-लहर खोल-खोल कुण्डली
उद्ग्रीव हुई
ग्रसने को आसमान,
त्रस्त सौरमण्डल के रंध्र-रंध्र प्रवहमान
खौलता लावा अजस्र ।
झल्लाते, हांफते-से बोले वरुण
'देखा, इस अहम् की पिटारी को
जल गई समूल रज्जु ऐंठन किन्तु शेष है ।

खोजो क्षीण साँसों की डोर कहाँ अटकी है' ?
जलदूत दौड़ पड़े
विद्युतमय परशु खड्ग
चेतना के स्तर पर स्तर तराशते।
निष्फल निर्वीर्य हत
लौटे विक्षुब्ध सभी
बोले देव !
कमठ की पीठ की शिराओं तक
धँसी हैं जड़ें
नश्वर न्यग्रोध की।
वरुण हतप्रभ अशांत
झूठ ! झूठ ! जल्पना विमूढ़
गूढ़ फेनिल फुफकार-सी,
ऊपर जो दृष्टि गई
देखा एक पत्ता सा तिरता
मुक्त वृन्तहीन
चेतना के शिशु को दुलराता, हलराता हुआ,
पैर का अंगूठा मुख में दिए बालक अबोध—
पंचतत्व के विकार चूस रहा
शोध-शोध
मृत्यु को अमरता से।

पौ फटने के पूर्व

नयी कविता पढ़ी
तो पढ़ता गया
पढ़ता गया
धूल के सुमेरु पर
चढ़ता गया
चढ़ता गया
एक बार झटके से गिरा तो ऐसा गिरा
कि कमर की कचोट का
स्फोट मुंह से फूट पड़ा……हिच्।
बड़ा संतोष हुआ
अब सब लिखेंगे निडर,
लिखने को बहुत है
चल रहा रहँट है
खूब रस चुएगा
मार दूंगा मर्दुए जो छुएगा।
देता है दाता तो छप्पर फाड़कर
बिल्ली के भाग्य से टूट ही गया छींका,
इतने दिनों व्यर्थ क्यों
अटके रहे ताड़ पर !
छिप-छिप कर पीते रहे

मर-मर कर जीते रहे
एक साथ घोल घाल वात कफ़ पित्त
सर्वाधिकार सुरक्षित ।
अब आओ सामने
खुला बाजार है
यार का मजार है,
बैठे ठाले अच्छा काम मिल गया
देख लो यारों का चाक ग़रेबाँ सिल गया ।
फ़ुरसत का काम है
मशक्कत हराम है,
फिर भी कहने को
बहुत शेष रह गया है यार
किस्मत के दिलदार,
कल सई साँझ से ही
पिछवाड़े में बोल उठे थे सियार ।
खुदा ने दिमाग़ दिया
आदम को हव्वा पर लाद दिया ।
सखुन तो सूझ है
देखो किसे सूझेगा
जीवन पहेली है
बिरला ही बूझेगा,
धनिक हो या कि श्रमिक
एज़रा पाउंड या ईलियट ।
बड़े-बड़े खर दिमाग़

होने लगे बाग-बाग,
तुम तो बस लोच ही दिखाते रहे
लखनऊ के देवता से
हाथ मटकाते रहे
जल रहे हैं दीप जलती है जवानी,
उई री अल्ला
मरे तेरी नानी।
छोड़ो यार
मियाँ-बीबी की तकरार।
कुहरे के परदे में
शबनम पर सूरज की
लिप्सा के रंग कभी देखे हैं ?
सांझ के कपोलों को
करौंदों की ओट में
किसी ने मसला था,
कैसी जल उठी थी उँगलियाँ शमा-सी
चिड़ियों को चुप करने में
दाँतों बीच दबी जीभ
कटने से बची थी, याद है ?
तो फिर बहने दो बंधु
हर नया जीवन
झरने-सा झर-झर झर
इसी तरह ढलता है
विरल-विरल, तरल-तरल

पत्थर के हाथी के हौदों पर
झूम-झूम चलता है,
कुंभ फोड़ देता है
मद-सा मचलता है।
रही बात कशिश की
तो मित्र इस युग में
कशिश के हेतु अवकाश ही कहाँ है ?
हर दिल एक आइना है
बहुत-से विचित्र चित्र
धुंधले हो पड़े रहे
अंतस ही अंतस में गड़े रहे
संदली या सुआपंखी,
केसरी सुंकुभी शंखी,
अस्तु अब रहो न दूर
व्यक्ति वैचित्र्य भरे भाव सूर
अन्यथा न जाने कितने
वाल्मीकि, कालिदास, विकटनितम्बा,
जयदेव, सूर, तुलसीदास
ढूहों के नीचे ही दबे रह जाएँगे।
हां, यदि कभी पैरों में चक्की बाँध
हिरन फिर न मारेगा छलाँग
वन-बीहड़ डाँग खेतों की मेड़ों पार
कोई तो लालबुझक्कड़
बूझ ही लेगा उसे।

आज है नई उमग
बात-बात में तरंग
नये भाव, नये छंद
पैर तैरते-से बढ़े
ठेस लग गई अजान
अकल के अँगूठे में
एक मिनट नौ सैकेंड
बैठकर मलता रहा।
स्मृति-सी जगी-जगी
प्रज्ञा थी ठगी-ठगी
सौत-सी अपाला की रस में थी पगी-पगी,
कैसे कहूँ ?
कसम मनभावन के दामन की
बात कुछ नई-नई सबमें लगी।
प्रेरणा अगाध मिली
नये-नये सत्त्व से
गर्व खर्वकारी इस
मौलिक वर्चस्व से,
वर्ना आज तलक कभी
इस तरह अप्रयास
आनन-फानन में
कविता लिख पाया नहीं।
लिखो बंधु खूब लिखो
गरमी की ऊमस में

भैंसों को अब लिखो
हरी हरी दूब लिखो,
खिल कर लिखो, खुल कर लिखो,
वाल्मीकि, कालिदास
तुलसी औ' सूरदास
बँध-बँध कर लिखते थे,
कहते थे, हिचकते थे,
शायद उस युग में
बँधने का ही रिवाज़ था।
अन्यथा
कमठ की पीठ में भी
फूट पड़ता कारबँन्किल
डाइबिटीज़ लिए फिरते
दर-दर वाराहदेव
कल्पनामय गरुणराज
साँस-साँस खाँस-खाँस
थाइसिस में थर्राते
कैंसर की कचोट से
तिलमिला उठते फणींद्र
आ गए मगर रवींद्र,
बरस पड़े पुष्कर आवर्तक के
दल पर दल
उभर आई उर्वशी
"पड़े छिलो पदप्रान्ते

फना लक्खशत अवनत कर
मंत्र शांत भुजंगेर मतो।'
बँधी वायु मुक्त हुई
साँसों में रहस्य के
किंतु अंतर्मुक्त हुई,
पी गए, प्रसाद, पंत
निराला सब नीराजन
द्रोणकलश में जो शेष
बस्तीवरी का जल
कंठ में समा गया
महार्घा महादेवी के।
मुक्त तो हुआ अनंग
अंग में समा-सा गया
मुग्ध प्रकृति पर्णा के
खुलकर भी अनखुला ही रह गया
कुमारसंभव,
मंडराता गाता हुआ
मेघदूत उड़ गया
राम्तास्वादो विवृतजघनां
को विहातुं समर्थः।
इसीलिए बंधु आज
तुमसे समर्थ
जन्मे हैं पुण्यदरी
तारणतरी की कोख में।

जो कुछ था गोपन, मन रोपन
सब मुक्त करो
बेतस के हाथ भी बढ़ाओ मत
सर के अधोवस्त्र को समेटने को ।
जो भी चुभे, चुटकी से पकड़ उसे
फाँस-सा निकाल लो,
गाँस सा बिठाल लो
देह बन्लो ढाल लो ।
पीकर पचाकर
संपूक्त न कह पाओ
तो भी कोई हर्फ नहीं
टुकड़ों-टुकड़ों में कहो,
हीरे के टुकड़ों का
मोल अधिक होता है,
उसे बेधने की
साधना में सेंध कर
माला गुह डालने की
तुम्हारी नहीं जिम्मेदारी,
जिसे गरज होगी, झख मारेगा
हीरे से हीरे को काटने का
हियाव चाव धारेगा ।
तुम तो सहज सिद्ध बनो
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
कापालिक अघोरघण्ट

चलीं क्लीं क्लीं क्लीं
नव-नव प्रयोगों से
अष्टांग योगों से
साधो सपर्या क्रिया
अनुक्षण श्रीवृद्धि करो
जानते हो ?
अवघड़ त्रिपुरारी को
त्रिपुरसुंदरी से
त्रिपुर भैरवी कहीं प्यारी थी ।
धन्य हुआ बंधु आज
सिन्धु के अनबींधे मोती . .
सलोनी गोताखोरों की
अंजुलि में भरे देख
अरप उदास-सी सरस्वती
निहाल हुई ।
प्रज्ञा पारमिता की
पतोहू के प्रसंग देख ।

किन्तु बन्धु मैं तो
निराश नहीं जीवन से,
अंकुर को सराहा सदा
औषधि की तुलना में,
स्पर्श नहीं मलमस्ती
वह तो पद:सन्धि है

युग के ग्रालोड़न को।
रूढ़ियों के वीज का हृत वक्ष
यों ही चिरता है।
मैं हूँ ग्राश्वस्त ग्रस्तु
समय की घमनियों में
गरम-गरम लोहू देख,
समाचार-सूचक-सी
चिन्तातुर भौंहों पर
उभरी हुई क्षितिज रेख।
तुमने जो किया
वह भी युग की एक माँग है,
ग्रस्तव्यस्त संसृति को
समेटने की लाग है।
मैं हूँ इसलिए प्रसन्न
मानता स्वयं को धन्य
लहरों की उच्छृंखल
चुनौती स्वीकारता
पवन-पुत्र की छलाँग
साँसों में धारता।
हर्ष यही
तुमने नये यन्त्रों से
नयी भूमि तोड़ी है
घिसी-पिटी लीकों का
बासी मोह छोड़कर

बंजरों औ' घाटियों की
छाती आज फोड़ी है।
मैं हूँ विश्वस्त
कल बनेगा प्रशस्त पथ
संयम यदि टूटा नहीं
पूतना के पय का
विष्कुंभ यदि फूटा नहीं।
अस्तु साधुवाद लो
इस साहस संयोजन पर
इतना ही कहना है
यह कलजुग का अन्तिम चरण
वरण यदि चाहते हो करना
कृतयुग का करण
गरल पियो
जियो।



स्वागत हे नवयुग के प्रभात

आश्वस्त धरणि, आकुल अधीर
विश्वास तरणि तम-तोम चीर
भर गया विश्व मानस में
ज्योतिर्मय जीवन मधु मुक्त-वात।

महमहा उठे कलि अलि माली
चहचहा उठी डाली-डाली,
खुल गए सृष्टि के चक्षु,
भिक्षु से कोक, कोकनद फुल्ल गात।

कल शिथिल पड़ी थी रात विवश
अब राग रंजिता रही विहँस
सविता के स्वागत में फूटें
फिर सामगान के स्वर प्रपात।

हिमालय

आह्वान

आज कहाँ से बाला जोगी
अलस सवेरे आया,
मीठी नींद सो रहा था
बरबस झकझोर जगाया।

और कहा—आराम छोड़ दो
सुख-सुविधा का धाम छोड़ दो

चलो हिमालय के अंचल में
झरनों के संग गाओ।

गौरीशंकर के चरणों में
अपना अहम लुटाओ,
कुछ दिन ऊँचाई भी परखो
परसो पारस पत्थर,
मैदानों के वासी निरखो
शिखरों का अभ्यन्तर।

सेवा की धूनी में शायद
कलुष-खोट जल जाए,
पशुपतिनाथ प्रसन्न पाशुपत
अस्त्र तुम्हें मिल जाए।

तुम्हारी मर्ज़ी

तुमने कहा सफर करो
पथ भरो भरो,
अपनी थकान
श्रमविन्दु से हरो,
स्टेशन पर स्टेशन
पड़ाव पर पड़ाव
बीच-बीच नगर निगम
ग्राम ठाँव-ठाँव
खेतों में अरहर जौं
चना सन कपास
इंजन की गर्मी में
चक्कों की साँस
रुकता हूँ तो धूल-धूल
फूलता है दम,
चल पड़ता लगती हवा
ज्यादा या कम,
परिचय हैं नये-नये
नया-नया प्यार
धरती की छाती में
कितना गुबार,

उड़ते हुए कोयलों से
डरना भी क्या ?
आँखों में किरकिरी
उभरना भी क्या ?
दूर-दूर पास-पास
पास दूर-दूर
देह-गेह नाते सब
होते चूर-चूर,
ईंट-ईंट जोड़-जोड़
रहना भी क्या ?
चाल-चाल ढाल रही
कहना ही क्या ?
दुनिया पुरानी हो
मैं नया-नया
मर्जी तुम्हारी है
मेरा तो क्या ?

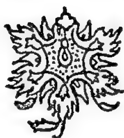


जय हो

जय हो उसकी
जिसने मुझको दो पैर दिए।
अपनों से बढ़ कर
जिसने मुझको गैर दिए,
मैं आज घूमता घाटी में
कितने उतार, कितने चढ़ाव
हर मंजिल के अपने पड़ाव,
हर कदम
नये नज्जारों से परिचय करता,
हर ठोकर में
भीतर कुछ छलक-छलक पड़ता।
अटकी आशा, भटकी उसास
उस क्षण तो लगती बुरी
बाद में लगता है
समतल राहों में चलने से
क्या पाऊँगा ?
जो कुछ पाया है
इन्हीं ठोकरों के बूते
जो कुछ सीखा है
फटी बिवाई का बल है

जो पीर पराई की
गर्मी से स्नेहिल है,
क्या बतलाऊँ मेरे साथी
जंगली पेड़ फल-फूलों की
मुस्कान मुझे क्या दे जाती ?
झरबेरिया की झाड़ी
क्यों लिपट-लिपट जाती ?
टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी
मेरे नंगे पैरों का धन है।
सरिताओं के कल कल की
मोड़ लचीली है,
जिसने शैशव में सहलाया
बाहों उछाल कर किलकाया
ये नटखट
चट्टानों की सखी सहेली हैं
फेनों में फूली हँसी
नहीं रोके रुकती
मैदानों का बहाव तो कुछ-कुछ नकली है,
सीधी सड़कें तो शहरों में ही होती है।
यों तो जीवन में
सब कुछ सहना पड़ता है
नदियाँ नहरों में बँध कर
याद संजोती है,
खेतों को शायद

उनकी तड़पन मिल जाए
मासूम धरा की छाती
दरक नहीं पाए
इसलिए बन्धनों को
उनने कब दुत्कारा ?
पर मुक्त प्रवाहों का सरगम
प्यारा-प्यारा
गाते-गाते
मिटने की साध नहीं जाती ।



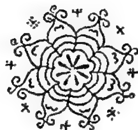
काठमाण्डू की पहली साँझ

न जाने बात क्या है
साँझ होते ही
तुम्हारी याद आती है
लजीली लालिमा के पार
सपनों की तरी सी तैर जाती है।
न जाने साम्य क्या है
इस ढलीली साँझ में, तुम में
कि इसकी आँख के कोए
बिना गाए, बिना रोए
हजारों पंछियों का प्यार
छितराई हुई
किरनों की छाया में समेटे है,
सुबक कर रह गया कोई
छिपाए मुख
चँदेरी के सितारेदार आँचल में,
यहीं से सुन रहा हूँ मैं
तुम्हारे प्रतीक्षातुर स्वर
यहीं से देखता हूँ मैं
कि तुम बैठी हुई
खिड़की की सीढ़ी पर

लगाए कान बैठी हो
कि साइकल की सहज सरसर
बता दे, लौट आया आज
कालिज को पढ़ाई कर,
खिले मुस्कान की कोंपल
कि मुखरित हो उठे मरमर,
उतरने भी ना पाऊँ मैं
तुम्हारा हुक्म है कुछ देर
अप्पी और रोचन को घुमाऊँ मैं,
मगर तुम तो गई भीतर
उठा कर चिक
बहुत-सा काम करना है
सतत संघर्ष के दामन के
बिखरे तार भरना है,
अभी आता हूँ, आता हूँ
तुम्हारे अनकहे अनुरोध को
स्वीकार करना है।
खड़ी हो चाय का प्याला लिए
जैसे किसी भटके मुसाफ़िर की
उसासों का हवाला हो
ठहर जाओ थका हूँ
एक मोढ़ा डाल दो
आँगन में, आँगन में
वहीं पर बैठ कर आराम से

कुछ बूंद ढालूंगा,
तुम्हारी चाय
उफ किन पत्तियों को
स्निग्ध हरियाली समोए है
निरी बेजान प्याली में
घुली हैं साँझ की किरनें
तुम्हारी आँख का प्रतिबिम्ब
जिसमें उभरता आता
हजारों मील की दूरी
उसी से नाप मैं पाता,
कहाँ हो मालवा में तुम
कहाँ मैं काठमाण्डू में
खुली है सामने खिड़की
हिमालय की विरल श्रेणी
तरल-सी आँख में उलझी,
पहाड़ी ढाल पर
धुँधली सफेदी उड़ रही आतुर
पहाड़ों के हृदय में भी
उठा करता धुआँ अहरह
अचल का चल अतल
दह दह बड़ी ज्वाला समेटे है,
कि जिसकी तरलता का तार
सदियों से नहीं टूटा,
इसी हिममय हृदय का

एक सोता ढल रहा मुझ में
शिखर की मूक विखरन सा।
पलक अब देखती अपलक
नही दिखती कहीं चोटी,
समूचा शैल
धरती की हथेली पर
उबलती चाय का प्याला
कि जिससे भाफ उड़ती है
घुमड़ती आह अन्तर की
तुम्हारी, छू रही मेरे
सिसकते सिक्त होठों को।



माध्यम

चाहा था तुम्हें कभी
आँखों के माध्यम से
मन अनुगामी था।
कहते थे समझदार
यह यौवन का बुखार
वर्षा की बहिया है
आई है उतर जाएगी,
मेरु की उमग
झरनों सी झर जाएगी।
यह भी है एक सत्य
परम्परा का अपत्य,
जीवन की हर धड़कन
अनुभव की आँच में
सिका-तपा करती है,
सूखने लगी सिवार
मानस के अन्तस से
शत शतदल फूट रहे
लहरों के अंचल में
शुक्ति-मुक्ति लूट रहे,
केशर-सर छूट रहे,

मधुप मधु रहा सँवार
कूल-मूल नाभि-नाल
छिन्न-भिन्न तमस जाल ।
किंतु बात बदल गई
बदला मैं, बदला जग
चाहने लगा हूँ आज
मन के माध्यम से तुम्हें
आँखें अनुगामी हैं ।

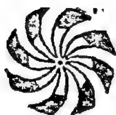


वातायन से हिमालय-दर्शन

बड़ा सौभाग्य है मेरा
कि प्रातः नित्य खिड़की से
तुम्हारा रूप पीता हूँ,
अलौकिक लोक के उन्मान का
क्षण एक जीता हूँ।
तुम्हारे श्वेत, निर्मल, शुभ्र
कर्पूरी कपोलों पर
फिसलती आँख की पुतली,
किसी की स्निग्ध सुधि की राशि सम
तुम जम गए कैसे ?
क्षितिज के छोर की उमड़ी हँसी
कब से समेटी है ?
अलौकिक कौन-सा अपरूप है
जिसको छिपाने को
बनाया मुग्ध अवगुंठन
कि जिसकी ओट ऋत औ' सत्य
रह रह झिलमिलाता है
सहस्रों पारदर्शी समस्तरों के पार
'तपसो अध्यजायत' कौंध जाता है।
युगों से योगियों के

सार्थवाहों के समुन्नत पग
भटकते फिर रहे अहरह
उसी उपलब्धि के पीछे
जिसे तुमने सँजोया
शुभ्र शिवता के तुषारों से
गगन की शून्य अभिलाषा
टिकी जिसके कँगूरों पर।
निपट आश्चर्य
बैठी पार्श्व में रत पार्वती
कुछ भी नहीं कहती
कि केवल देखती रहती
युगों से सहज पुंजीभूत
साधक की अचल मुद्रा।
प्रतीक्षा की तितीक्षा में
उमस कर फूट पड़ती है
कहीं गंगा, कहीं जमुना
तरंगित कामनाओं की
सहेली सी अलकनंदा।
हमारे पूर्वजों को
क्या मिला तुमसे
नहीं मालूम,
न उतनी साधना मुझ में
न उतना आत्मचिंतन ही
मगर मैं

नवस्फटिक की स्निग्ध सिहरन में
चमकते ऊर्ध्व कलशों को
निहारा नित्य करता हूँ
यही आशा लिए मन में
कि शायद तुम कभी बोलो
हमारी अर्चना तोलो ।



दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से

दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से
सारी थकान हैरान हो गई है।

समतल पथ पर चलने वाले राही
अब आगे बिलकुल खड़ी चढ़ाई है,
गिरिवर के गर्वोन्नत मस्तक से ही
मनु के चरणों को मिली बड़ाई है,
उच्छ्वसित प्रतीक्षा पथ के दीपों से
ऊषा-सन्ध्या के तार मिलाना है
मुस्कान मिल गई जो चलते चलते
उससे पत्थर पै फूल खिलाना है,
प्रस्थान समय आँखों के भरने से
मीठी पीड़ा महमान हो गई है।
दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से
सारी थकान हैरान हो गई है।

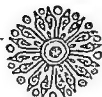
मंजिल खुद घूमेगी पीछे पीछे
गति-मति को ही पाथेय बनाना है,
अगले अर्जन के साथ-साथ साथी !
पिछले प्रमाद का ब्याज चुकाना है।

ये युगों-युगों से जमी हुई परतें
साँसों की गरमी से पिघलाना है,
हिम की ठिठुरन से जड़ीभूत जग में
चेतनता के नव स्रोत बहाना है।

अब अणु क्या ? दिक् की कल्पित दूरी भी
मनुपुत्रों को आसान हो गई है,
दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से
सारी थकान हैरान हो गई है।

अब मंगल ग्रह में मंगल कलश धरो
चंदा की चूनर सजने वाली है,
ध्रुव में मण्डप बनने की बारी है
शुक्र में शहनाई बजने वाली है।
सप्तर्षि सगुन पढ़ने को आतुर हैं
द्यावा-पृथ्वी की आज सगाई है,
गुरु की आज्ञा से समधी सुरपति ने
इसपुटनिक की पालकी मंगाई है।
रसमयी रसा फिर दिव की दयिता बन
नव-मुग्धा सी नादान हो गई है,
दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से
सारी थकान हैरान हो गई है।

अब बाँध बँधेंगे ब्रह्मसरोवर में
स्वर्गंगा से भी नहरें छूटेंगी,
पुष्कर आवर्त्तक जल-विद्युत गृह से
रेगिस्तानों में फसलें फूटेंगी।
क्यारियाँ कट रही हैं नंदन वन में
अब अमरलोक का गोपुर खुलना है,
सोलहों कलाओं से सौन्दर्य सजे
अब इंद्रपुरी धरती की तुलना है।
कल्पना सलोनी कवियों की विभु को
भूमा का मधुमय दान हो गई है,
दुर्गम पथ पर गीतों के झरने से
सारी थकान हैरान हो गई है।



विकल्प

जो लिखा उसे मत पढ़ना तुम
जो पढ़ा उसे मत लिखना तुम,
यह बूझ-बुझव्वल नहीं बंधु
जो कह डाला वह सचमुच ही हल्का था
पल का था।
यों तो इस साँझ सवेरे में
शाश्वत हो ही क्या सकता है
लेकिन पीकर जो पचा लिया
सबको देकर जो बचा लिया
उसने ही जीना सिखलाया
कुछ काम आया।

दो खंजन

फुदका करते हैं सुबह-शाम
मेरे आँगन में दो खंजन।

इनको किन छंदों में बाँधूं ?
इनको किन सपनों में बाँधूं ?
अपनी चंचलता से मुखरित
चपला की आँखों के अंजन।

छिन मेघाली के बालों में
छिन इन्द्रकमल की डालों में
बिंबित प्रतिबिंबित हिम सौधों के
झिलमिल झिलमिल वातायन।

बरसात शरद बेमानी है
यह देश बड़ा सैलानी है
बारहों महीने यहाँ खनकते हैं
मधुऋतु के कर-कंगन।

साँसें साधे चुप-चुप......

साँसें साधे चुप-चुप कबसे जगते हो ?
बाँहों के बंधन में कैसे लगते हो ?
जी करता तुमको लिए लिए जग घूमूँ
सौ बार तुम्हारी पुलकित पलकें चूमूँ
सौ बार समेटूँ असीमता अंकों में
सौ बार बिखरती अलकों में झुक झूमूँ
बलिहारी, बाँकी अदा तुम्हारी साजन
मदहोशी में भी मचल-मचल उठते हो।
दो कूलों में सरिता का ज्वार जुटा है
गागर में सागर जैसे उमड़ उठा है
किस बड़वानल की इंगित पर अनजाने
मिट्टी-पानी का यह संजोग जुटा है।
उमड़न बंदी पर अंतर की घुमड़न से
लहरों-लहरों में सिहर-सिहर लुटते हो।
किसने साधी धरती से स्वर्ग नसेनी
हर नये सृजन की ऐसी ही बेचैनी
अपनी विशेषता विधना ही पहचानें
बन गई अमरता चेरी आज सुनयनी !
संसार पुराना हो पर मेरे प्रियतम
तुम जनम-जनम में नये-नये लगते हो
साँसें साधे चुप-चुप कबसे जगते हो ?

तुम्हारी याद आती है

कभी जब काम से थक कर
अकेला बैठ जाता हूँ
तुम्हारी याद आती है।
तरसता हूँ मिले फुरसत
तुम्हारे गीत गाऊँ मैं
कभी झगड़ो, कभी रूठो
ठठोली कर मनाऊँ मैं,
मगर तुम भागती फिरतीं
जमाने के जुलूसों से
महल से, महफ़िलों से
क़हक़हों से, गुलफ़रोशों से।
सदा इस ताक में रहतीं
अकेला कब मिले आऊँ
थके मांदे मुसाफिर को
खिझाऊँ और चौकाऊँ
बहुत दिन बाद बैठा हूँ
खुदी से बेतरह उलझा
पुरानी यादगारों की लटों को
फिर रहा सुलझा।

अचानक आ गई तुम
गो हजारों कोस की दूरी,
अभावों की अतल खाई
लगी कुछ कुछ भरी-पूरी,
लगा जैसे किसी ने
दहकता माथा दबाया हो
तुम्हारा सावनी झूला
बहारों ने झुलाया हो।

क्षितिज की कोर पर छाने लगे
फिर बादलों के दल
चली पुरवा कि पलकों में
किसी का छू गया आँचल
बजी साँकल किसी मेहमान के
आने की आहट-सी
खुलीं पलकें तो होठों पर
महज इक गुनगुनाहट थी,
कहीं भी हो मुझे एहसास
इतना हो रहा इस दम
जवानी में जली जो
आज भी रह रह
सुलग उठती वो बाती है
कभी जब काम से थक कर
अकेला बैठ जाता हूँ
तुम्हारी याद आती है।

अन्तराल

अकेलापन अच्छा लगता है
पर लोग रहने नहीं देते
घेर कर रिक्तता और बढ़ा देते हैं,
लगता है भाग जाऊँ कहीं
किंतु मुझे
नफ़रत है भागने से
जो कुछ भी आया सहज
महज स्वीकारा है,
इसीलिए अभी तक
कुछ भी न कर पाया
किंचित भर पाया नहीं
शून्य अंतराल को।

अनायास

आज क्या सोचकर
तुमने मुझे प्यार दिया।
पिछले तीन दिनों में
मिले कई बार हम
खिले भी, खेले भी,
फिर क्या विशेष बात
विधि का विडम्बन या
चौबीस घड़ियों में
ऐसे भी आते क्षण
जब कुछ अपना नहीं रहता
अथवा पराया सब अपना हो जाता है।

चित्रकार के प्रति

इस तपोभूमि में तुमने जो आराधा है
अपने सपनों को बड़ी साध से साधा है
ये चित्र नहीं आशीष हिमालय की बिखरी
जो रंगों रेखाओं में तुमने बांधा है।

तुम साधक निष्ठावान निरीह नियोगी हो
कल के संयोगी बनते आज वियोगी हो
गोरख-मछींद्र की भूमि तुम्हें पहचान गई
तुम अलख जगाने वाले कोई जोगी हो।

ये लहरें तो बहने को हैं वह जाएंगी
अनबोली एक कहानी कहती जाएंगी
जो चित्र बनाए तुमने जन-जन के मन में
रंग घुल जाएं पर रेखाएं रह जाएंगी।

बौद्ध-गया

आज बौद्ध गया देखा
शीतल बोधि वृक्ष भी
विरल हो गया है जो
घना रहा होगा कभी
फिर सघन होने की संभावना से स्पंदित,
छाया छू गई है मुझे
ढाई सहस्राब्दि पूर्व
तप्त-दीप्त किरणों की,
पावन हो गया है मन
तन जैसे गंगा स्नान कर आया हो।
धन्य अश्वत्थ जो
आश्वस्त करता रहा
पीढ़ियाँ मानवता की,
सुनते हैं यहाँ तपे थे तुम कभी
दग्ध कर डाले थे पर-अपर सारे सूत्र
दावा का दाह भी मलय बना डाला था।
शरद की चाँदनी भी
सहमी-सी खड़ी रही
वसुंधरा साक्षी है।

कैसी संवेदना समाई
दग्ध मानस मे
दुख की प्रतीति आह
कैसी विराट् बनी,
करुणा के भगीरथ !
क्षणभंगुरता क्षणदा सी
कैसे छू गई थी
तुम्हारे द्रवित मानस को ?
उस दिन से जन-जन का दुख
बना अपना दुख
मृग-पशु-पक्षी-पतंग
आत्मीय सहचर से ।
उस दिन से सो न सके
जगना भी दंशनमय
मृत्यु का रहस्य
सुलझाने को आतुर
जीवन से जूझकर ।
सीमा थी सहने की
रहने को सीख देने वाला
रह पाए शान्त, संतोषी
आनन्दी यदि,
तो फिर कौन पिघले ?

गंगा बन सींचे कौन
मरुथल की प्यास को ?
सोचता हूँ
कैसी रही होगी संवेदना वह ?
जिसने पकवान कर डाले सब फीके
और राजभोग
क्षुद्र, हेय, मिट्टी की ढेरी से,
कामिनी के कलित कपोल
उन्नत उरोज,
हिरनी के आयत नयनों के
अराल तार
नहीं भेद पाए मर्म
शर्म से ब्रह्मानद का सहोदर
सिसकता रहा
रुठे हुए बालक सा ।
हाय रे पराई पीर जानने के जिज्ञासु !
कैसे थे कठोर तुम
धोखे में छोड़ गए सोती
सखी प्यारी को ।
जिसका न कोई अवलंब था
तुम्हारे सिवा ।
एक की पीर की उपेक्षा

या समष्टि की ?
सुनते हैं पागल से
तपने लगे अहर्निशि

तप भी तुम्हारा तप देख
थरथराया था,
सांच-आंच झेलने में
दिनकर भी दृप्त-सा,
बचपन की बात मुझे
सहसा याद आ गई
जाम्बु वृक्ष तले
एकासन में समासीन
आगत की गाथा रही
आए गए अंशुमाली
बेला ढल गई विरक्त
छाया पर हटी नहीं,
हे सुजात,
खीर उस सुजाता की
सम्यक् समर्पणमय
शाश्वत मातृत्व की
महान् निधि दे गई,
हाय रे विरागी
गृहत्यागी, वीतरागी वीर,

अनजाने
पुरुष से नारी तुम्हें कर गई,
ममतामयी जिसने
सहस्राब्दियों से पिलाया दूध
कोटि-कोटि त्रस्त ग्रस्त
दीन-हीन शिशुओं को,
काश तुम जान पाते
उस समय भी मस्तक पर
तना था झीना वितान
भाग्यहीना विधुरा
यशोधरा के आँचल का।
सम्यक् संबोधि पूत
दिव्य ज्योति
करुणा की पहली मुस्कान में
थीं प्रतिबिंबित
दूधिया दंतुलिया मूक राहुल की
कुछ तो थी अंतर में
विह्वलता अनजानी
जिसने घुमाया तुम्हें
ग्राम नगर जनपद वन
डगर-डगर द्वार-द्वार
आर्त की गुहार पर।

कैसे यह मान लें
कि जिसके सवेदन में
सृष्टि की व्यथा कथा
रात-दिन जगती थी,
अपनी को भुलाकर
पराई सुना करती थी,
विचलित हो उठता जो
कण-कण की सिहरन से
अणु-अणु का भेद जिसे
क्षण-क्षण था भेद रहा
जिसके सिंधु मानस में
इंदु ज्वार भरता था
तारों की टिम-टिम
पुतलियों में प्रतिबिंबित,
उसके उनीदे शून्य पहरों मे
विद्युत-सी
कौंधी न होगी कभी
याद पिया प्यारी की ।
कुश की साथरी में
सोते या अधजगे
करवट की आहट में
गोरी बाँह छूती न होगो

पार्श्व कल्पना के ?
हाय, वे अजान बाहु
भरने को आतुर
न हो उठते होंगे कभी
भूले हुए
मादक-आलिंगन के चाप को ।
मांसल विशाल वक्ष
धड़कता न होगा सहलाने को
केशों की घनता से घिरे
चंद्र-आनन को,
कभी-कभी सोचता हूँ
कौन तपा पंचाग्नि
तुम या यशोधरा ?
आग वह किस की थी
जिसने इस जीवन की
नींद तुम से छीन ली,
राग वह किसका था
जिसने अपनाया कन-कन को
बहुजनहिताय ।
चिर-विरही संसृति के
तुमने जिस वियोग का
संयोग दिया जग को

विह्वल बहुजनसुखाय।
चार आर्य सत्य जो
सुझाए आठ मार्गों से
उन सबके अंतस में
ज्वाला थी किसकी ?
कौन थी माध्यमिका
प्रज्ञा पारमिता वह,
मनोकाश प्रांतर में
प्रतिबिंबित तारा सी।



माँ गयी

आज मुझे प्यार करे,
कोई नहीं, कोई नहीं।
अब मैं दे सकता हूँ,
आंशिक सहानुभूति
जग के अनाथों को।
सात साल बाद
पारसाल कातिक में
दो दिन को गया था गाँव
कोने में बैठी थी
मूर्तिमती ममता
काया की छाया-सी।
आँखों में अनायास
धूमिल-सा तिरा था कुछ
सिक्त हो गया था शीष
अस्फुट आशीषों से,
इतने दिनों कहाँ रहा
खोज-खबर क्यों ली नहीं,
शिकवा तक सुनने को
तरस गया,

परस की
स्निग्ध-स्निग्ध सिहरन ही शेष है।
दो दिन ही रहा पास
श्वास-श्वास उच्छ्वास
चलने के दिन कलकी थी
बोलीं '—गंगा नहा आओ आज'
आज के ही दिन
तुम्हें ले गए ये मुझसे छीन
प्रातःस्मरणीय पिता
दूध छुड़ा कर मेरा
शहर में पढ़ाने को
पाँचवीं में लगे थे तुम।
कहने को एक बार
माँ के आदेश का
मैं ने भी पालन किया
लौटा चढ़ी दुपहरिया
चंदिका माई वाले
बक्सर के घाट से।
खा पीकर बिस्तर जब
बाँधने को उद्यत हुआ
बार-बार कहने लगीं

लाला न जाओ आज
किंतु हंत मानी नहीं
मनुहार पयस्विनी की
विवश विसुध
एक-आध बार और
कह कर चुप हो रहीं।
रार अधिक की नहीं
उसका तो केवल मुझे ही
अधिकार था,
चलते समय बोलीं
आगए अच्छा हुआ
तुम्हें आज देख लिया
शायद दुबारा फिर
देख भी न पाऊँ तुम्हें,
घाव में सलाई सो
घुमा दी किसी ने अजान
बोला क्यों ?
ऐसा क्यों कहती हो ?
बोलीं कुछ बात नहीं
आँखों से दिखने लगा है कम
शायद दुबारा आ पाने तक
रही-सही ज्योति भी

जैसे आई चली जाय।
छुए चरण, चला, मुड़ा
काम कुछ जरूरी था
जैसा सरकारी नौकरी में
हुआ करता है।
कई बार आती रही याद
वही बात, एक बात
बीच काम काज के
कोशिश की भूल जाय
भरसक तो भुला भी दिया।
शूल आज कसका है,
मुझे याद आता नहीं
कभी को हो कोई सेवा
जीवन जन्मदात्री की
कष्ट ही देता रहा
भूला हुआ अपने में,
अस्तु मैं अपनी
माँ का भी सगा नहीं
मुझसे कभी कोई करे
आशा नहीं प्यार की।
आज होश आया है
जब सब बेकार है

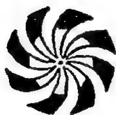
पत्र मिला
माँ गयीं
कैसी थीं ? कैसे बताऊँ आज
आशीषों आशीषों आशीषोंमयी।



प्यासों को प्रणाम है

बहुत दिनों बाद
जमी बर्फ़ आज पिघलती है
रिसने लगा है मन
छाती पहाड़ की
दरके या सिसके,
जो कर रहा है
आज बहूँ सिर्फ बहूँ
नादी बनूँ या न बनूँ
टकराऊँ चट्टानों शृंगों से
शतधा सहस्रधा।
संगम का सुख ?
अन्त में उदासी छोड़ जाता है,
सदियों की सत्ता तो
कोरी बकवास है।
मेरे अस्तित्व के सीकर
बिखर जाँय
यत्र तत्र
पत्र पत्र

जीवन को जिलाने में
खुद को पिलाने में
गिरि के गुरुत्व को
साभार राम राम है
प्यासों को प्रणाम है।



गुरांस का फूल

तुम खूब मिल गए पथ के बीच बसेरे में
जीवन का आधा मोड़ घूमते घेरे में
कुछ कहता पर शायद चलने का समय हुआ
लाओ गुरांस का फूल लगादूं जूड़े में।

फूले गुरांस झूम रहे झाड़-झाड़ में
फागुन फला कि आग लगी है पहाड़ में!

